सब माया है

बेतरतीब क़िस्से

सब माया है

(बेतरतीब क़िस्से)

डॉ. अजित

वेरा प्रकाशन

सब माया है

डॉ. अजित

ISBN : 978-81-972323-7-4

पहला संस्करण : सितम्बर, 2024

आवरण छायाचित्र : सविता जाखड़

प्रकाशक :

वेरा प्रकाशन

मेन डिग्गी रोड, मदरामपुरा, सांगानेर

जयपुर-302029 (राजस्थान)

+91-96804-33181

veraprakashan@gmail.com

SAB MAYA HAI | Fiction by Dr. Ajit

उन स्त्रियों का वैभव मेरे साथ रहा
जिन्होंने मुझे चौक पार करना सिखाया!

- आलोक धन्वा

दो बातें

स्त्री की पारंपरिक आदर्श छवि के कई प्रतिमानों से मुक्त इस चिरप्रतीक्षित पुस्तक की मुख्य पात्र मुझे इसलिए भी प्रिय है कि वह स्त्री को अधिक मनुष्य होने का अवसर देती है।

माया की परिपक्वता में एक परिष्कृत चेतना के दर्शन होते हैं। वह हर अस्तित्व जन्य दबाव से मुक्त है। या कहें कि अपेक्षाओं, नैतिक-सामाजिक नियमावलियों आदि के हर दबाव पर विजय कर आयी है। प्रतीत होता है वह लंबे आत्मसंवाद में रही है और अब उसके पास हर प्रश्न, हर जिज्ञासा का ठोस उत्तर है। उसके वाक्यों में एक दृढ़ कथन है।

पात्रों की भरमार नहीं होना 'सब माया है' का एक उल्लेखनीय पक्ष है। यहाँ दृश्यों की भीड़ भी नहीं। यह दो पात्रों की यात्राओं की कहानी है। ये यात्राएँ बाहरी भी हैं और भीतरी भी। बाहरी यात्राओं में पहाड़ हैं, मैदान हैं, समंदर हैं, जिनके बहाने बहुत-सा गूढ़-अगूढ़ किया गया है।

भीतरी यात्राओं का माध्यम हैं प्रश्नोत्तर। अधिकतर प्रश्न नायक की ओर से आते हैं। प्रश्न साधारण हैं, उत्तर अप्रत्याशित। उत्तर पाठक को चौंकाते हैं, उसके चेहरे पर मुस्कुराहट लाते हैं और अंततोगत्वा पाठक पात्रों की यात्रा में साथ हो लेता है।

ऐसा इसलिए कह रही हूँ, क्योंकि मेरे लिए यह सीरीज़ मेरे अपने मानस की छानबीन का मामला रहा। इस वृत्तांत से गुज़रते हुए अपने बहुत से कॉन्सेप्ट्स से प्रथम साक्षात्कार हुआ। यह मनोविज्ञान पर लेखक की अंदरूनी पकड़ का परिणाम है।

नायक और नायिका का रिश्ता इस पुस्तक का एक और अनूठा पक्ष है। यह रिश्ता ना दोस्ती का है (नायिका के दावे के बावजूद), ना प्रेम का और ना ही इन दोनों के कहीं बीच की कोई स्थिति है।

कहीं लगता है नायक, नायिका के प्रभामंडल के प्रभाव क्षेत्र में है तो कहीं नायिका की नायक पर भावनात्मक निर्भरता महसूस होती है। यह मायालोक में सबसे रोचक जिज्ञासा बिंदु है कि कौन किस पर भारी? माया कहीं-कहीं डॉमिनेटिंग दिखती है और नैरेटर सबमिसिव। कहीं-कहीं घटनाएँ और संवाद माया को नायक के मुकाबले बुद्धिमती स्थापित करते हैं। ठीक उसी समय नायक जानबूझकर अल्पज्ञानी बना हुआ महसूस होता है। लगता है जैसे नैरेटर चाहता है कि हर दुविधा का निवारण माया की ज़ुबानी हो। वस्तुतः यह दो पात्रों का पारस्परिक समझ का रिश्ता है, जहाँ संयोगवश एक पात्र पुरुष है और दूसरा स्त्री।

यह स्त्री पात्र लेखक के भीतर स्त्री की इच्छित छवि का प्रतिबिंब ना होकर, 'लेखक कैसी स्त्री होना चाहेगा' की अभिव्यक्ति है।

ऐसा इसलिए भी है क्योंकि डॉ. अजित स्त्री मन के लेखक हैं। यह बात दो तरह से समझी जा सकती है। लेखक के पास एक स्त्री के मन की समझ है और लेखक की स्वयं के अंदर के स्त्री तत्व से बहुत निकटता है। माया लेखक के भीतर की स्त्री है।

एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू जो मेरे संज्ञान में आया वह यह कि हिंदी लेखन का ढाँचा मूल रूप में पितृसत्तात्मक है। ऐसे में लेखक का अपनी नायिका को इतना स्पेस देना सुखद है। यह लेखक का सदियों और पीढ़ियों से अपने इर्द-गिर्द स्थापित रूढ़ियों की नकार भी है।

माया प्रचलित स्त्री पात्रों से कहीं अधिक मनुष्य है शायद इसलिए कि यह पात्र थोड़ा ग्रे है।

रूढ़ आदर्शों से दूर रखते हुए लेखक बड़ी आसानी और बारीकी से उसे पौरुषेय होने से भी बचा ले जाता है। नायिका कहीं भी अपनी नैसर्गिक स्त्रीयोचित विशिष्टताओं से विचलित नहीं दिखाई पड़ती।

तो मायालोक में 'सब माया' नहीं है। इसके केंद्र में एक मज़बूत मानवीय पात्र है, जो अपने और अपने अंदर-बाहर के पर्यावरणीय घटकों के बारे में यथार्थवादी दार्शनिक दृष्टिकोण रखता है।

यह पुस्तक निश्चय ही पाठक की बेडसाइड पर स्थायी जगह बनाने में कामयाब होगी।

मेरी अशेष शुभकामनाएँ।

— सुदर्शन शर्मा

कवयित्री

* *

कुछ भी कहने से पहले जो बात एक लाइन में कहनी है वह यह कि माया एक करिश्मा है और अजित जी उसके रचयिता। ...और माया को जानने के बाद पाठक ज़रूर मेरी बात से सहमति रखेंगे।

अगर मैं अजित जी को मनोवैज्ञानिक कवि या लेखक कहूँ तो ये ग़लत नहीं होगा, लगभग हर व्यक्ति अपने रोज़मर्रा के जीवन में किसी-न-किसी पल थोड़ा-सा ही सही लेखक या कवि-सा भावनाओं को महसूस ज़रूर करता है, पर उन भावनाओं को शब्दों में भी ढाल सके ये हुनर सबके पास नहीं होता।

बस हमारे मन की गहराई में उतरकर उसकी बातों को खोजकर शब्दों की शक्ल में, जस का तस ढाल दे, ऐसे लेखक हैं अजित जी।

‘आप मन पढ़ते हैं।’ माया को पढ़ते हुए या उनकी अन्य किसी रचना को पढ़ते हुए मेरे द्वारा या अन्य लोगों द्वारा अक़्सर ये टिप्पणी उन्हें मिल जाती है।

माया जितने हिस्सों में मुझे पढ़ने के लिए मिली, उसे पढ़कर यूँ महसूस हुआ मानो माया एक जादू है, कोई भी इसे पढ़कर और ख़ासकर एक स्त्री इसे पढ़कर उसके (माया) किसी ना किसी हिस्से से ख़ुद को ज़रूर जुड़ा हुआ पाएगी।

ग़ज़ब का किरदार है ‘माया’ आत्मविश्वास से लबरेज़ और आत्मनिर्भर। कभी वह स्वाभिमानी है तो कभी भावुक, कभी दार्शनिक है तो कभी प्रैक्टिकल। मैंने जब-जब इसे पढ़ा, लगा ये किरदार जीवंत है और सामने है।

माया हँसती है, रोती है, उदास होती है, मिलती है, बिछड़ती है, पर माया आप को कहीं टूटती या कमज़ोर होती नहीं मिलेगी।

माया एक करिश्माई व्यक्तित्व है।

नायक से उसके संवाद पढ़ने वाले को विवश करते हैं कि वह माया को सोचे, उसकी कल्पना करे और ये सब एकदम सहज और स्वाभाविक-सा लगता है।

अजित जी को मैं ‘स्त्री का मन पढ़ने वाला लेखक-कवि’ कहती हूँ, उन्होंने माया द्वारा स्त्री के मन को रचा है, उसे जस का तस शब्दों में ढाल कर किताब की शक्ल दी है।

लीक से हटकर, अपनी समकालीन रचनाओं के प्रचलित विषयों से एकदम अलग, एक नये अंदाज़, नयी शैली की रचना है माया।

दो व्यक्तियों के आपस के संवाद में रोज़मर्रा के जीवन के अनछुए पहलू हैं, भावनाएँ हैं, कही-अनकही बातें हैं। ‘सब माया है’ पढ़ते हुए बार-बार आप यह सोचेंगे कि ‘हाँ यही तो हम भी सोचते हैं, यही तो हम भी कहना चाहते हैं।’

संवाद शैली को हम सबने नाटक के रूप में पढ़ा है पर माया और नैरेटर का संवाद एकदम नये कलेवर में है, और बेहद रोचक है।

अजित जी ज़मीन से जुड़े आमजन के बीच रचने-बसने वाले लेखक हैं। बड़ी-बड़ी बातें, क्लिष्ट भाषा और कठिन उपमाएँ उनकी लेखनी से कोसों दूर हैं। वे तेरी-मेरी हम सबकी बात हमारी भाषा में करते हैं! उनकी सोच, उदाहरण, बातें, कहानियाँ, कविताएँ सब हमारी हैं, हमारे बीच से उठाई होती हैं, उनको पढ़ना माने ख़ुद को पढ़ना या अपने किसी जानने वाले को पढ़ना।

वापस माया पर आती हूँ। माया को मैंने टुकड़ों में पढ़ा है, अब किताब की शक्ल में एक साथ पढ़ूँगी! जिस महिला से मैं टुकड़ों में मिली, किताब द्वारा उसे एक साथ एक समय में जानूँगी!

मैं मंत्रमुग्ध हूँ माया पर, उसकी बुद्धिमत्ता पर, उसकी परिपक्वता पर, लेकिन नायक के चुस्त और सधे सवाल न होते तो माया की इन ख़ूबियों का निकल पाना असंभव था!

नायक और माया की बातचीत की जुगलबंदी, पहाड़ और समंदर की यात्राएँ एक नए अनुभव से रूबरू कराती हैं।

अजित जी को ढेर सारी शुभकामनाएँ व बधाई इस किताब के लिए!

मुझे आशा और विश्वास दोनों है कि यह किताब हर वर्ग में समान रूप से पसंद की जाएगी पर महिलाओं को यह किताब विशेष रूप से पसंद आएगी!

एक अलग तरह की रोचक, सरल लेकिन प्रभावशाली रचना रचने के लिए, माया रचने के लिए लेखक निश्चय ही प्रशंसा के पात्र हैं।

— अदिति मिश्रा

स्वतंत्र टिप्पणीकार

अपनी बात

मैं अक़्सर ख़ुद से यह सवाल करता हूँ कि मैं क्यों लिखता हूँ? और इस सवाल का अलग-अलग समय पर अलग-अलग जवाब मुझे मिलता है। मगर वह जवाब मुझे अभी तक न मिला, जिसकी मुझे तलाश है। उदारता का अभिनय करते हुए मैं यह कह सकता हूँ कि लिखना मुझे स्पिरिचुअल प्लेज़र देता है। दिलचस्प बात यह है कि लिखना आपको जहाँ एक तरफ़ बहुत देता है तो वहीं यह आपसे बहुत लेता भी है। मगर पाने की ख़ुशी और गौरव इतना बड़ा होता है कि हम खोने का मलाल तक नहीं करते हैं।

यह किताब मैंने संभवतः 2018 में लिखनी शुरू की थी। आदतन मैं चीज़ों को जिस उत्साह से शुरू करता हूँ, मध्यांतर तक वह मद्धम पड़ने लगता है। आरंभ में फ़ेसबुक पर 'मायालोक' नाम से इस श्रृंखला को मैंने सिलसिलेवार लिखा और यह बहुत मक़बूल भी हुई। कोविड काल में मैं स्वयं लिखने से डिरेल हो गया और मायालोक मुझसे छूटने लगा; कुछ दोस्तों से मैंने अपनी बेचैनी साझा की, क्योंकि मेरे अब तक के लेखकीय जीवन में यह मेरे दिल के सबसे क़रीब का काम था। मैं कविता के निर्जन वन से निकल कर कथा और गद्य की दुनिया में एकांतसुख भोग रहा था। आख़िरकार 2024 भी आधा बीतने के बाद यह किताब अपने निर्वाण को प्राप्त हुई।

मैं चाहता था कि यह कथा अभी न थमती, मगर यह बात स्वीकार करने में मुझे एक लंबा अरसा लगा कि प्रत्येक कथा और पात्र की एक नियत यात्रा है। लेखक केवल

एक माध्यम भर है। जिसे जितना और जब तक कहना है, वह उसी हद तक कलम का साथ देता है।

‘सब माया है’ एक क़िस्म की आत्मस्वीकारोक्ति भी है कि जब हम अपने मन के अद्‌भुत संसार को किसी कारक-कारण सिद्धान्त से नहीं समझ पाते हैं, तब यही दार्शनिक सत्य हमारी मदद करता है और हम अनुराग की दासता से बच निकलते हैं। आसक्ति और अनासक्ति के मध्य जो द्वैत बसता है, माया उसी मनोगत और अस्तित्वगत अवस्था का एक दस्तावेज़ है, जो उस मानचित्र के समान है जिसका उपयोग हम तब करते हैं जब अनुमान हमारा साथ देने से इनकार कर देता है। इस मानचित्र में आप सबके मन के टापू भी अंकित हैं। उन्हें खोजना आपकी ज़िम्मेदारी है और इस खोज में शायद यह किताब आपकी मदद कर सकती है।

मेरे व्यक्तिगत और लेखकीय जीवन के प्रमाद ने मुझे महत्वाकांक्षा के दबाव से लगभग मुक्त रखा है। यशकामी, धनकामी मैं उतना ही बन सका, जितने में मेरे कम्फ़र्ट ज़ोन की दीवारें सुरक्षित बची रहें। यह भी एक क़िस्म की काहिली ही है, मगर मुझे इसमें सुख मिलता है। मेरी पूर्व की दो किताबें उन दोस्तों के भावनात्मक तगादे का परिणाम थीं, जिन्हें कदाचित मैं संभावनाशील लेखक लगता रहा। यह तीसरी किताब भी दोस्तों से किए वादे का ही परिणाम है।

यह जो किताब आपके हाथ में है इसके पीछे कुछ नाम ऐसे हैं जिनका ज़िक्र किए बिना मुझे मोक्ष न मिलेगा। सुदर्शन शर्मा मैम और अदिति मिश्रा जी, इन दो मित्रों ने ‘मायालोक’ को इतने मन से और महीनता से पढ़ा कि मुझे लिखने का हौसला मिलता रहा। मेरे निवेदन पर आप दोनों ने एक-एक टिप्पणी किताब के लिए लिखकर भी दी उसके लिए भी मैं कृतज्ञ हूँ। सीमा दुबे जी और शैल त्यागी बेज़ार- इन दो मित्रों को मैं वक़्त-बेवक़्त अपनी प्रूफ़ की ग़लतियाँ ठीक करने के लिए कहता रहा। मेरी अब तक की किताबें इन दो मित्रों के कारण ही भाषा के शुचितावादी दोस्तों के कोप से बचती रही हैं। डॉ. सुशील उपाध्याय मेरे मित्र भी हैं

और संपादक भी। हम घंटों बिना थके सुरुचिपूर्ण ढंग से अलग-अलग विषयों पर गाल-बजाई कर सकते हैं। उनकी निगाह से यह किताब छपने से पहले गुज़री और उन्होंने वाक्य-संरचना के तमाम ऐब दुरुस्त करवाए।

अंत मैं उन तमाम दोस्तों को याद करूँगा जिनके कारण मैं हूँ और जो मेरी ख़ुशी में अपनी ख़ुशी का मिलान करते हैं। उनके नाम अलग-अलग हो सकते हैं, मगर सबका एक ही केंद्रीय भाव है- मुझे ख़ुश देखना। ऐसे तमाम दोस्त मेरे विकल जीवन के नायक हैं।

वेरा प्रकाशन अभी शुरू हुआ है। मैं इस प्रकाशन से जुड़ा और मेरी प्रिय किताब इस प्रकाशन से प्रकाशित हुई, यह बात मुझे ख़ुशी देती है, क्योंकि बनवारी भाई मात्र प्रकाशक नहीं अपितु साफ़-सच्चे दिल के ज़हीन व्यक्ति हैं। उन्हें शुभकामनाएँ और लेखक पर भरोसा करने के लिए धन्यवाद।

यहाँ से आगे की ज़िम्मेदारी अब आप सबकी है कि लेखक लिखता रहे और आप तक पहुँचता रहे। इसके लिए पाठक मित्र जो भी जतन कर सकें, ज़रूर करें। आप सब का प्यार मेरे जीवन की स्थायी पूँजी है।

शुभम अस्तु !

आपका

— डॉ. अजित

वह एक मायावी स्त्री थी।

मायावी इसलिए नहीं कि उसकी बातों में कोई इंद्रजाल था। मायावी इसलिए कि उसको देखकर अलग सम्मोहन होता था और सुनकर अलग।

मैं जब उसको अपने नाख़ूनों को तराशते हुए देखता था, तब मैं जान पाता था कि कोई तीक्ष्णता कलात्मक रूप से कैसे ख़ूबसूरत हो सकती है। आप ख़ुद चाहें कि वह उन नाख़ूनों से आपकी गर्दन का ग्लेशियर तोड़कर पीठ पर कुछ नदियों के गलियारे बना दें।

उसकी हँसी में नाराज़गी और नाराज़गी में हँसने की तमाम वजह मौजूद रहती थी। उसकी आँखों के नीचे गहरे डार्क सर्कल बने हुए थे। मैंने जब पढ़ी-पढ़ाई बातों के हिसाब से उससे कहा कि ये डार्क सर्कल स्ट्रेस से बनते हैं, तो वह मेरी इस बात पर ठहाका मारकर हँस पड़ी और बोली कम-से-कम तुम इन पढ़े-लिखे बौड़म लोगों में मत शामिल हो। आँखों के नीचे डार्क सर्कल स्ट्रेस से नहीं सपनों के अलाव में मुस्कान सेंकने से बनते हैं। मगर यह बात कभी कोई स्त्री तुम्हें नहीं बताएगी। वह स्ट्रेस वाली स्थापना से ख़ुद का तादात्म्य स्थापित करके तुम्हारी बात की पुष्टि कर देगी।

उसने एक दिन अपनी आँख से थोड़ा काजल लिया और मुझसे कहा– 'क्या तुम इसका स्वाद बता सकते हो।'

मुझे लगा काजल का क्या स्वाद होगा? मैंने कहा– 'काजल तो बेस्वाद होता है।'

इस बात पर वह फिर हँस पड़ी और बोली– 'क्या तुमने कभी चखा है किसी स्त्री की आँखों का काजल?'

मैंने कहा– 'नहीं।'

फिर उसने चखने के लिए सहमति नहीं दी, मगर वह मेरी आँखों में डर को पढ़ चुकी थी। उसने मुस्कुराते हुए कहा– 'काजल के स्वाद से डरता हुआ पुरुष मुझे सुंदर लगता है, क्योंकि यहाँ वह अपनी सीमा को स्वीकार करता है। कुछ ही दुस्साहसी स्त्री के काजल का स्वाद चख कर उसका स्वाद बता पाते हैं, क्योंकि या तो यह मनुष्य को मौन कर देता है या फिर विद्रोही बना देता है।'

उसके पैर की अंगूठे के नज़दीक वाली उँगली अंगूठे से बड़ी है। मैंने उसे देखकर एक दिन अंदाज़न कहा कि 'तुम स्वेच्छाचारी हो।'

उसने कहा– 'यदि यह तुम्हारा अनुमान है तो मैं इस पर कुछ नहीं कहूँगी, मगर यदि यह तुम्हारा अनुभव है तो मैं कहूँगी यह सच है।'

जब पहली दफ़ा मैं उससे मिला, वह पौधों में पानी दे रही थी। मैं उसके साथ-साथ चल रहा था। उसने पूछा– 'जानते हो पौधों को पानी देना क्यों ज़रूरी होता है?'

मैंने कहा– 'पानी इनका भोजन है, शायद इसलिए।'

वह मेरे इस जवाब पर थोड़ी निराश थी। उसने कहा– 'ये तो विज्ञान की किसी किताब के जैसी बात कही तुमने।'

'पौधों को पानी देना इसलिए ज़रूरी होता है ताकि इन्हें इस बात का एहसास रहे कि कौन इनके लिए श्रम का तनाव लेता है।'

मैंने कहा– 'ये तो एहसान जताने जैसा है!'

इस पर उसने हँसते हुए कहा– 'एहसान जताने जैसा नहीं, यह अपनी पहचान बताने जैसा है। वरना आदमी और पौधे, दोनों सबसे पहले अपनी नज़दीकी चीज़ों को भूल जाते हैं।' मैंने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया।

फिर हम घर के दालान में थोड़ी देर चुप बैठे रहे जैसे एक-दूसरे को जानते भी न हों। दो मनुष्यों के मध्य ऐसा मौन विरल होता है, जब करने के लिए कोई बात न हो। फिर अचानक मैंने इस मौन को भंग करते हुए कहा कि 'मुझे थोड़ी प्यास लगी है, पानी मिलेगा?'

उसने कहा– 'बिल्कुल मिलेगा, बशर्ते कि तुम पानी को तुमसे मिलवाने वाले को याद रखोगे।'

मैं थोड़ा खिन्न हुआ यह सुनकर, और मैंने कहा कि 'शर्त की बजाए मैं प्यास को महसूस करने के अनुभव को अधिक मूल्यवान समझता हूँ।'

उसने फिर कुछ नहीं कहा और एक बोतल और गिलास मेरे सामने लाकर रख दिए और कहा– 'प्यास तुम्हारी ज़रूरत है, इसलिए बोतल से गिलास में पानी डालने का श्रम भी तुम्हारा होना चाहिए।' मुझे इस बात पर थोड़ी हँसी ज़रूर आई मगर मैं हँसा नहीं और सीधे बोतल से ही पानी गटक लिया।

हमने थोड़ी देर लौकिक बातें कीं, मगर उन बातों में कोई रस नहीं था। वह जैसे कहकर बीतने के लिए ही बनी थीं। महत्वाकांक्षाओं और योजनाओं पर हमारी कोई बात नहीं हुई, इसलिए मैंने इस मुलाक़ात को एक सार्थक मुलाक़ात के रूप में दर्ज़ किया।

चलने से पहले मैंने कहा कि 'मेरा ख़याल है कि अब मुझे चलना चाहिए।'

इस पर उसने थोड़ा हँसते हुए कहा– 'ये ख़याल तुम्हारा तो बिल्कुल नहीं। तुम यहाँ से जाना चाहते हो, मगर मेरे पास शायद तुम रुकना भी चाहते हो।'

मैंने कहा– ''शायद' जिस वाक्य में लगा होता है मैं उसे गम्भीरता से नहीं लेता हूँ।'

'ठीक है ! अब तय है कि तुम वास्तव में जाना चाहते हो।'

वह मुझे मेन गेट तक छोड़ने आयी। मैं बाहर निकला और आदतन यूँ ही एक बार पीछे मुड़ा तो देखा वह एकटक मेरे जाने को देख रही थी। मैंने कनखियों से देखा कि उसने स्माइल पास की, मगर मैंने इस तरह बिहेव किया जैसे मैंने उसे देखा ही नहीं।

उस दिन उसे मैंने फ़ोन किया, मगर उसने रिसीव नहीं किया। थोड़ी देर बाद मुझे एक एसएमएस मिला कि आज बात करने की मनःस्थिति में नहीं हूँ। जब लगेगा कि बात कर सकती हूँ, मैं कॉल कर लूँगी। मैंने 'ओके' लिखा और एक यात्रा पर निकल गया। दो दिन बाद उसका फ़ोन आया तो मैं रिसीव नहीं कर सका। दरअसल उस वक़्त मैं बाथरूम में था और फ़ोन की रिंग बजती रही।

जब नहाकर निकला तो एक मैसेज रिसीव होने की सूचना फ़ोन की स्क्रीन पर फ्लैश हो रही थी। मैंने गीले हाथों से ही मैसेज ओपन किया तो लिखा था– 'अच्छा! फ़ोन रिसीव न करके आज तुमने अपना बदला चुकता किया। मन हो तो फ़ोन कर लेना।' बदले वाली बात से मेरे दिल को अजीब-सी ख़ुशी मिली, मगर मैं यक़ीनन बदला तो नहीं ले रहा था। मैंने इस बात का कोई प्रतिकार नहीं किया। इतनी चालाकी मेरे अंदर हमेशा से थी।

मैंने फ़ोन नहीं किया कुछ दिन ...और उधर से भी कोई शिकायत नहीं हुई।

फिर एक दिन मुझे फ़ोन आया, मगर नम्बर अज्ञात था। आदतन मैं अज्ञात नम्बर से आई कॉल रिसीव नहीं करता, मगर उस दिन वह कॉल उठा ली। उधर से बहुत अलसाई आवाज़ आयी– 'ज़िंदगी को कब तक हिसाब-किताब के सहारे जीते रहोगे? अगर तुम्हारी नाराज़गी दूर हो गई हो तो आज शाम कॉफ़ी पीते हैं।' मैंने केवल इतना भर कहा कि 'ठीक है।'

फ़ोन कटने के बाद कैफ़े के नाम का मैसेज मुझे मिल गया था। मुझे लगा कि मैं समय से पहले पहुँच जाऊँगा, मगर वह मुझे वहाँ पहले से बैठी मिली। 'हेल्लो' करके मैं बैठ गया। कॉफ़ी की पसंद पूछने की बजाए उसने दो अपनी पसंद की कॉफ़ी ऑर्डर कर दी। मैंने कहा– 'मुझे यह कॉफ़ी पसंद नहीं है।'

'पता था, इसलिए ही ऑर्डर की।' उसने मुस्कुराते हुए जवाब दिया।

'तुम मुद्दत से अपनी पसंद के मुताबिक़ जीने के आदी हो गए हो। आदमी को कुछ दिन अपनी पसंद के ख़िलाफ़ भी जी कर देखना चाहिए।' उसने सलाह देते हुए कहा।

यह बात मुझे पसंद आयी, इसलिए मैंने बहस के लिए कोई नई बात नहीं कही।

तब तक कॉफ़ी आ गई थी। उसने पहला घूँट भरा और मेरी आँखों में देखने लगी। मैंने ऐसे आत्मविश्वास से सिप ली जैसे मेरी प्रिय कॉफ़ी हो।

'तो कैसी लगी नापसंद चीज़?' उसने छेड़ते हुए कहा।

'जब से मैंने पसंद और नापसंद को देखना बंद कर दिया, तब से चीज़ें मुझे अच्छी या ख़राब लगनी बंद हो गईं हैं, फ़िलहाल मैं एक तरल के रूप में इसे पी रहा हूँ।' मैंने थोड़ा दार्शनिक मुद्रा में जवाब दिया।

'अच्छी बात है। एक समय के बाद चीज़ें हमें अच्छी या ख़राब लगनी बंद हो जाती हैं। चीज़ें हमारे साथ होती हैं और हम कहीं और।'

'क्या यह बात रिश्तों पर भी लागू हो सकती है?' मैंने पूछा।

'हम्म! बशर्ते आप देख सकें।'

‘मैं तुम्हें बरबाद कर सकती हूँ। मुझसे बचकर रहना।’ ये उसने अपनी तीसरी मुलाक़ात में मुझसे कहा था। मगर इस बात से मुझे कोई डर नहीं लगा। इसकी तीन वजहें मुझे लगती हैं। एक– ‘मैं शायद बरबाद होना चाहता था।’ दो– ‘मैं शायद पहले से बरबाद था।’ तीन– ‘मैं शायद बरबाद होने के डर से मुक्त हो चुका था।’

मैंने कहा– ‘आप अपने दावे को लेकर निश्चित नहीं हैं, इसलिए यहाँ मैं शायद का संदेह लाभ ले रहा हूँ और इस बात से आगे बढ़ रहा हूँ। यदि आप कहतीं कि मैं तुम्हें बरबाद कर दूँगी तो शायद बरबाद होने के अलग-अलग पक्ष पर मैं एक बार सोचता भी।’

यह सुनकर वह थोड़ा गंभीर हो गई और उसने मुझसे पूछा– ‘अच्छा, एक बात बताओ। बसंत के बीतने पर कौन-सी बात बसंत को पुनः लौटने के लिए बाध्य करती है?’

मैंने कहा– ‘यह प्रकृति का स्वाभाविक क्रम है। मैं इसमें कोई नियोजन नहीं देखता हूँ।’

‘यह एक लोकप्रिय बात तुमने कही। मुझे पता है तुम्हारे पास इस सवाल का इससे बेहतर एक जवाब है।’ उसने थोड़ा अधीर होते हुए कहा।

‘मुझे लगता है वह पतझड़ ही होता है, जो बसंत को आने के लिए मजबूर करता है।’ मैंने कहा।

'तो क्या सौन्दर्य करुणा अथवा उपकार की पुकार से पल्लवित और पोषित होता है?' उसने विस्मय से पूछा।

'हाँ! कह सकते हैं, सौन्दर्य की अपनी एक करुणा होती है और करुणा ख़ुद में एक उपकार है।' मैंने जवाब दिया।

उसके बाद वह थोड़ी देर चुप बैठी रही और मैं उसकी चुप्पी का अनुवाद करता रहा। फिर अचानक से उसने कहा– 'अब मुझे जाना होगा।'

'किधर?' मैंने पूछा।

'जगह जानकर तुम क्या करोगे? बेहतर होता तुम यह सवाल करते कि क्यों जाना है? मगर फ़िलहाल तुम उस सवाल से चूक गये हो, इसलिए मैं जवाब देने को लेकर बहुत उत्साहित नहीं हूँ।' यह कहकर वह चुप हो गई।

'ठीक है, मगर क्या यह जाना लौटने की वजह बन सकता है कभी?' मैंने थोड़ा हँसते हुए पूछा। वह मुस्कुराई और चलते हुए मेरी आँखों में आँखें डालकर बोली– 'लौटकर आने की वजह कभी भी जाने से नहीं मिलती है। लौटकर आने की वजह यदि जाने से मिलती तो फिर कोई कभी जाता ही नहीं।'

'तो फिर कहाँ से मिलती है।' मैंने उत्सुकता से पूछा।

'जिस दिन तुम कहीं लौटकर जाओगे, उस दिन यह सवाल तुम्हें ख़ुद बेहद बचकाना लगेगा, इसलिए कहाँ, क्यों, कब? इनसे बेहतर है, तुम जाने और लौटकर आने और फिर से जाने में यक़ीन रखो।

यही यक़ीन तुम्हें एक दिन बरबाद होने से बचा सकेगा।'

फिर मैंने कोई सवाल नहीं किया और अपलक उसका जाना देखता रहा। उसका जाना घटित हो रहा था और मैं अपना बरबाद होना ख़ुशी से देख रहा था।

जहाँ तक याद है वह शुक्रवार की शाम थी, जब मुझे उसका फ़ोन आया। फ़ोन पर बिना किसी उत्साह के उसने सूचनात्मक प्रस्ताव रखा कि ‘मैं दो दिन के लिए पहाड़ पर जा रही हूँ। यदि तुम चलना चाहो तो चल सकते हो।’ हालाँकि शनिवार को मुझे एक ज़रूरी काम था, मगर न जाने क्यों मैं यह कह बैठा कि ‘क्यों नहीं, आपके साथ मैं ज़रूर एक यात्रा करना चाहूँगा।’

‘ठीक है। यात्रा की बाक़ी डिटेल मैं थोड़ी देर में तुम्हें भेजती हूँ।’ यह कहकर उसने फ़ोन काट दिया।

एक बार मुझे लगा कि क्या इस तरह से एक अनजान स्त्री के साथ पहाड़ की यात्रा पर जाना ठीक होगा? मगर थोड़ी ही देर बाद मैंने यह सोचकर इस दुविधा से मुक्ति पा ली कि यह एक नया अनुभव होगा और ऐसा अवसर शायद ही फिर कभी जीवन में मिले। फ़िलहाल अज्ञात का रोमांच मेरे सारे भय अपने साथ ले उड़ा था।

थोड़ी देर मैं यथास्थिति में बैठा यह सोचता रहा कि यह यात्रा न जाने किस जगह की होगी। तभी मुझे एक एसएमएस मिला, जिसमें सुबह पाँच बजे नगर के मुख्य चौराहे पर मिलने की बात लिखी थी। मैंने सुबह की यात्रा के लिए जल्द अपना बैग पैक किया और नगर-परिक्रमा पर निकल गया। रात को नींद उचटी रही। थोड़ी देर के लिए मैं फिर सही-ग़लत के मुक़दमे में उलझा रहा। आख़िर में एक उपन्यास पढ़ता हुआ सो गया।

सुबह मैं पाँच बजे नियत जगह पर पहुँच गया। थोड़ी देर में एक कार मेरे पास आकर रुकी। कार वह ख़ुद ड्राइव कर रही थी। मैंने बैग पिछली सीट पर पटका और अधिकार से आगे की सीट पर सवार हो गया। जब तक शहर की सीमा में रहे, हम दोनों बिल्कुल चुप रहे। नेपथ्य में आबिदा गा रही थीं 'घर जला लिया रौशनी के लिए।'

जब कार मुख्य सड़क पर आ गई तो उसने पूछा– 'क्या तुम शराब पीते हो?'

मैंने कहा– 'हाँ, मगर यदा-कदा।'

फिर उसने दूसरा सवाल किया– 'तुमने ये क्यों नहीं पूछा कि हम कहाँ जा रहे हैं?'

'मेरे लिए जगह नहीं, बस आपका साथ महत्वपूर्ण है, इसलिए पूछने की कोई ज़रूरत महसूस नहीं हुई।' मैंने जवाब दिया।

'फिर भी मंज़िल का पता होना हमें आत्मविश्वास देता है।' उसने शुष्कता से कहा।

'मुझे नहीं देता। मंज़िल से अधिक मुझे रास्तों से प्यार है।' मैंने मुस्कुराते हुए जवाब दिया।

'फिर तुम इस सफ़र के लिए मेरा सही चुनाव हो।' उसने पहली बार अपनी स्मित हँसी से कहा।

'क्या तुम्हें ड्राइविंग आती है?' ये उसका पहला लौकिक सवाल था।

'मुझे हर वह काम आता है, जिसके लिए नियंत्रण की ज़रूरत होती है।' मैंने हँसते हुए कहा।

'नियंत्रण यदि ऐच्छिक न हो तो यह बहुत बोरिंग भी होता है।' उसने मेरी बात काटते हुए कहा।

'बोर होना हमारे ज़िंदा होने की एक मज़बूत पहचान है।' मैंने कहा।

'मेरे ख़याल से ज़िंदा नहीं, होश में होने की पहचान है बोर होना।' उसने कहा।

'एक ही बात है।' यह कहकर मैं चुप हो गया।

'जब कार चलाते हुए थक जाओ तो बता देना, मैं ड्राइव कर लूँगा।' मैंने पुरुषोचित उदारता प्रकट करते हुए कहा।

'मैं थकान बताने में यक़ीन नहीं रखती हूँ, मेरी थकान तुम्हें मेरी आँखों में पढ़नी होगी।' यह कहकर उसने गाने की वॉल्यूम बढ़ा दी।

और गाना बज रहा था... 'हमन है इश्क़ मस्ताना हमन को होशियारी क्या !'

गाड़ी धीरे-धीरे पहाड़ पर चढ़ रही थी, और मैं अपने अंतर्मन की तलहटी में उतर रहा था। एक संकरे मगर सुनसान रास्ते पर नीरवता को चीरते हुए गाड़ी चढ़ाई चढ़ रही थी, मगर मन की तरलता नीचे की तरफ़ बह रही थी। हम दोनों ही अपने-अपने व्यक्तित्व की लघुता का पहाड़ की ऊँचाई से मिलान करते हुए एकदम चुप थे। गाड़ी में जो गाने बज रहे थे वह दो अलग-अलग हिस्सों में बँट गए थे। जब चढ़ाई आती तो केवल शब्द सुनाई देते और जब थोड़ी ढलान आती तो केवल संगीत को ही कान सुन पा रहे थे। कालबोध जैसे ठहर गया था।

अचानक से उसने एक तीव्र मोड़ पर गाड़ी को किनारे रोक दिया। 'थोड़ी देर यहीं रुकते हैं, यह कहकर वह कार से नीचे उतर गई।'

वास्तव में मैं भी यही चाह रहा था। पिछले तीन घंटे के लगातार पहाड़ी सफ़र से एक ब्रेक लेने का मन हो रहा था।

इस मोड़ पर दो नुकीले मगर बड़े पत्थर रखे हुए थे। हम दोनों ने उनको आसन बनाया और दूर तक फैली घाटी को निःश्वास देखने लगे। थोड़ी देर मौन बैठे रहने के बाद उसने कहा– 'आओ ! थोड़ी दूर पैदल चलते हैं।' हम दोनों ने कार को वहीं छोड़ दिया। मैंने जाते समय कार के पिछले दोनों टायरों के पीछे दो छोटे पत्थर लगा दिए। मुझे ऐसा करते देखकर उसने कहा– 'मुझे लगता है तुम जीवन और वस्तुओं को लेकर अतिरिक्त रूप से सावधान हो।'

मैंने हाथ झाड़ते हुए जवाब दिया– 'नहीं। मैं जीवन और वस्तुओं को लेकर सावधान नहीं हूँ, मगर मैं ख़ुद को एक ज़िम्मेदार मनुष्य के तौर पर देखता हूँ, इसलिए प्रायः चीज़ों को नज़रअंदाज़ नहीं कर पाता हूँ।'

'ज़िम्मेदार होने की घोषणा करना दरअसल संभावित पलायन की सबसे अच्छी भूमिका होती है। यह बौद्धिक चालाकी पुरुषों में जन्मजात होती है।' उसने हँसते हुए कहा।

मैं फ़िलहाल बातचीत को पुरुष बनाम स्त्री में नहीं बदलना चाहता था, इसलिए मैंने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया।

थोड़ी दूर साथ चलने के बाद मैंने फ़ोन से एक पहाड़ी फूल की फोटो क्लिक की। मैं उसके एकान्तिक सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया था।

'तुम जानते हो, किसी भी भाषारहित वस्तु की बिना अनुमति के तस्वीर क्लिक करना एक क़िस्म का नैतिक अपराध होता है, जो कि मनुष्य बहुधा अपनी ख़ुशी के लिए करता है।' मेरे फ़ोटो खींचने पर उसने एतराज़ जताते हुए कहा।

'मैं इसे अतिविश्लेषण कहूँगा। कई बार हम अनुमति के बाद भी अपराध करते हैं। अनुमति को सहमति मान लेना मनुष्य की आदत भर है। कई बार अनुमति में असहमति भी निहित होती है। रही बात भाषारहित वस्तु की, तो किसी ऐसी चीज़ की तस्वीर लेने का ख़याल भर आना। इस बात की पुष्टि होती है कि वह हमारे लिए क़ैद होने के लिए तैयार है। मैं अस्तित्व की अनुमति और संवाद पर यक़ीन रखता हूँ।' यह कहकर मैं चुप हो गया। उसके बाद उसने इस बात का कोई प्रतिवाद नहीं किया।

उसकी यह सबसे बड़ी ख़ूबसूरती थी कि वह हर संवाद को अपने ढंग से अधूरा छोड़ देती थी। उसके साथ रहकर मैं प्रायः निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाता था। वह

संभवतः मुझे निष्कर्ष रहित जीवन जीने का प्रशिक्षण देने के लिए ही मेरे जीवन में घटित हुई थी।

हम दोनों तब ही बात करते थे जब बात करना ज़रूरी हो अन्यथा यूँ ही साथ-साथ अनजान बन चलते रहते थे।

जब एक किलोमीटर हम पैदल चल लिए, तब उसने कहा कि 'अब हमें वापिस कार के पास लौटना चाहिए।' मैंने कहा– 'लौटने के लिए क्या एक नियत दूरी आगे की तरफ़ तय करनी ज़रूरी होती है?' उसने कहा– 'नहीं, हम जहाँ खड़े हैं वहाँ से भी लौट सकते हैं, मगर वह लौटना हमें दूरी का बोध नहीं कराता। जाने और लौटने में दूरी का बोध हमें यह बताता है कि हम गतिशील थे।'

वापिस कार में बैठते हुए मैंने कहा– 'आप अब आराम कीजिए, यहाँ से गाड़ी मैं चलाता हूँ।' वह साइड की सीट पर बैठ गई और मैंने गाड़ी को रफ़्तार दी। थोड़ी देर बाद उसने कहा– 'तुम एक अच्छे सारथी हो मगर एक ख़राब सहयात्री हो।'

मैंने पूछा– 'क्यों?'

'सबसे ख़राब सहयात्री वह होता है, जिसके साथ की आपको आदत लग जाए। इस लिहाज़ से तुम एक ख़राब सहयात्री हुए और अच्छे सारथी इसलिए कि जब तुम गाड़ी चला रहे हो, तो मुझे एक बार भी यह नहीं लगा कि मेरी मौत के लिए कोई दूसरा आदमी ज़िम्मेदार हो सकता है।'

मैं थोड़ा हँसा और फिर एक चुप्पी हमारे बीच पसर गई।

पहाड़ पर गए हमें एक दिन हो गया था। मगर हम अपनी-अपनी लघुताओं में अटके हुए थे, ख़ासतौर पर मैं। मैं इस यात्रा में ख़ुद के होने का अर्थ तलाश रहा था। कभी मुझे लगता कि शायद मैं एक फ़िलर की तरह हूँ। विकल्प के तौर पर ख़ुद को देखना किसे अच्छा लगता है, सो यह बात सोचने भर से मुझे उदासी हो रही थी।

कई बार मुझे मेरा गाँव और गाँव की छोटी पगडण्डी याद आ रही थी और मैं यह सोचने लगता कि ये मैं कितनी दूर निकल आया हूँ? क्या यह कोई रास्ता है या यह एक भ्रम है जो मुझे मंजिल से मिलता-जुलता आभास दे रहा है। पहाड़ की चटख़ धूप मुझे जीवन के दुःखों की स्मृतियों की तरफ़ ले जा रही थी, जिसकी तपन में ठंडी हवा मुझ तक आती और मेरे माथे को चूम कर लू में तब्दील हो जाती थी।

ऐसा नहीं कि मैं उसके साथ पहाड़ पर आकर दुःखी या असहज था, मगर कभी-कभी मेरा एकांत मुझे चारों तरफ़ से इस क़दर घेरता था कि मैं पहाड़ की चोटी पर खड़ा होकर भी ख़ुद दूर किसी निर्जन रेगिस्तान में भटक रहा होता था। यहाँ आते-आते हमें लगभग शाम हो गई थी, दूसरा रास्ते की थकान भी थी, इसलिए पहुँचकर मेरा खाना खाने का भी मन नहीं हुआ। मैं नहाया और सीधा सोने चला गया।

अगले दिन सुबह जब मैं जगा तो वह धूप में अपने बाल सुखा रही थी। मैं थोड़ी देर अनमना बैठा, फिर मैंने पूछा– 'क्या आज हम दिन भर यहीं रहने वाले हैं?' उसने कहा– 'मेरा कहीं घूमने का मन नहीं है। यदि तुम कहीं जाना चाहते हो तो जा सकते हो।' यह सुनकर मैं नहाने चला गया और उसके बाद हमने नाश्ता साथ किया।

मुझे लगा वह यहाँ एकांत चाहती है, क्योंकि यहाँ आकर वह बेहद सीमित हो गई थी, इसलिए मैंने अपना बैग उठाया और उस पहाड़ी क़स्बे की परिक्रमा के लिए निकल गया। वह वहीं छत पर खुले बालों के साथ शायद कोई किताब पढ़ती रही।

दोपहर बाद जब मैं लौट रहा था तो मैंने कुछ बीयर की कैन ख़रीद लीं। पहाड़ पर दिन छोटा होता है और अकेले मुझे शहर से बाहर निकलने का मन भी नहीं हुआ, इसलिए मेन मार्केट का एक चक्कर लगाकर और थोड़ा चना-चबैना लेकर मैं लौट आया।

उसने पूछा– 'क्या तुमने लंच कर लिया?'

मैंने कहा– 'नहीं, शायद सुबह ब्रंच हो गया था इसलिए भूख नहीं लगी।'

'मैंने कुछ हल्का-फुल्का खाने के लिए ऑर्डर किया है, तुम उसमें से शेयर कर लेना।'

मुझे कम ही भूख थी इसलिए मैंने कहा– 'ठीक है।'

मेरे पास डॉ. संजय ग्रोवर का एक नॉवेल था– 'नाइन डेज ऑफ़ निर्वाणा'। वह बहुत दिनों से अधूरा पड़ा था। मैंने बैग से उसे निकाला और पढ़ने लगा और साथ ही बीच-बीच में बीयर की कैन से एकाध सिप ले लेता। उसने बीयर की कैन देखकर कहा– 'जब साथ में कोई बैठा हो तो यह बुनियादी शिष्टाचार बनता है कि उससे पूछ लिया जाए!'

मैंने हँसते हुए कहा कि 'बीयर मैं हक़ से माँग कर पीने में यक़ीन रखता हूँ। आपका मन था तो आपको कहना चाहिए था। क्योंकि अगर मैं आपकी जगह होता तो ऐसा ही करता।'

'ठीक है एक कैन मुझे भी दो।' मैंने कैन दे दी। उसने बिना 'चीयर्स' की

औपचारिकता किए घूँट भरा और अपने सामने के पहाड़ की तरफ़ देखने लगी। मैं अपने नॉवेल में लीन था।

अचानक उसने कहा– 'क्या नौ दिन में निर्वाण मिल सकता है?'

मैंने कहा– 'निर्वाण तो एक पल में मिल सकता है और न मिले तो कितने ही सालों में न मिले।'

'अच्छा, तुम्हारे हिसाब से निर्वाण क्या है?' उसने पूछा।

मैंने कहा– 'जब हिसाब लगाने की ज़रूरत समाप्त हो जाए वही निर्वाण है।'

वह हँसते हुए बोली– 'ये एक पलायन है तुम्हारा।'

'दरअसल हम सब अपने-अपने सच से भागते हुए लोग हैं। हमने अपनी मानसिक तुष्टि के लिए नए तर्क गढ़ लिए और हम उनकी निश्चितता पर मुग्ध हैं। हमारी हँसी कूटनीतिक होती है और रोना एक सार्वजनिक आयोजन जैसा होता है। हम सुख को परिभाषित करते हुए दुःखों के महिमामंडन पर चले जाते हैं और दुःखों का निरादर करते हुए सुखों को स्थापित करने की असफल कोशिश करते रहते हैं।

वास्तविक मुक्ति का एक यूटोपिया हमारे पास है और उसके ज़रिए हम अपनी छूटी हुई कामनाओं का इंद्रधनुष भरे सूखे में भी देख लेते हैं।'

मैं केवल सुनता रहा। इसके बाद मैंने नॉवेल बंद करके रख दिया।

हम आज लौट रहे थे। रात हमारी कुछ मुद्दों पर थोड़ी निजी क़िस्म की बहस हो गई थी, इसलिए सुबह थोड़ी उदास थी। विचारों की दुनिया थोड़ी शुष्क होती है और तर्क मनुष्य को निहत्था देखना पसंद करते हैं । उसके साथ हुई कुछ मुलाक़ातों के बाद मैं यह समझ गया था कि संवाद का बड़ा हिस्सा निषेध, खंडन और मंडन पर ही केन्द्रित हो जाता है। बहस की एक विशेषता यह होती है कि इसमें कोई एक जीतता है मगर अंतर्मन के स्तर पर वहीं कुछ-कुछ अंशों में हार भी जाता है।

जाते समय जितनी लाइव यात्रा थी, लौटते वक़्त वह उतनी ही बोझिल थी, हालाँकि बाद में मुझे अपनी इस चुप्पी पर थोड़ा अफ़सोस भी हुआ, मगर उसने मेरी उदासी का इतना सम्मान ज़रूर किया कि उसने उसका कारण नहीं पूछा। थोड़ी बहुत बातचीत वही हुई, जो बेहद ज़रूरी थी।

लौटते वक़्त उसने मुझे उसी चौराहे पर उतार दिया, जहाँ से उसने मुझे पिक किया था। वापसी में मैंने गाड़ी ड्राइव नहीं की, शायद मैं अब न थकन देखना चाहता था और ना ही थकन का कोई विकल्प बनना चाहता था। लौटते समय अच्छी बात यह रही कि गाने सारे मेरी पसंद के बजते रहे इसलिए मेरा सफ़र आसानी से कट गया।

उसके बाद हम दोनों अपनी-अपनी दुनिया में व्यस्त हो गए। मैं एक महीने के लिए केरल की यात्रा पर चला गया। इस दौरान ना उसका कोई फ़ोन/मैसेज या ई मेल मिला और ना मैंने ही सम्पर्क करने की कोशिश की।

एक दिन मैं केरल के समुद्र के तटवर्ती गाँव में अपने कॉटेज में सो रहा था। अलसुबह मुझे सपना आया कि वह मुझे तलाशती घूम रही है। उसके हाथ में एक डायरी है और वह उसके पेज फाड़ती है और आने-जाने वाले लोगों के हाथ में देती है। देखने में यह एक सामान्य डायरी का पेज होता है, मगर जैसे ही कोई उसे देखता है, उसमें मेरी तस्वीर बन जाती है।

सपना थोड़ा डरावना क़िस्म का था, इसलिए मैं थोड़ा घबरा कर जगा। मैंने पानी पिया और घड़ी में टाइम देखा। उस समय सुबह के चार बजे थे। उसके बाद मैं सो नहीं पाया। मैंने एक कप चाय बनाई और वॉक पर निकल गया। अलसुबह समंदर अपने सबसे गहरे स्वरूप में होता है। उसकी आँखों में रात की लहरों की थकान साफ़ तौर पर पढ़ी जा सकती है। मैं लहरों के किनारे-किनारे चलता गया और अपने उस सपने के बारे में सोचता गया।

थोड़ी देर बाद मुझे लगा कि आज मुझे वापिस लौटना चाहिए, जबकि आज दोपहर में मुझे क्रिश्चियन कॉलेज़ में एक लेक्चर के लिए बुलाया गया था। मैंने कॉलेज के मैनेजर को एक माफ़ी वाला एसएमएस किया और सीधा बैग उठाकर वापसी की यात्रा के लिए निकल पड़ा।

दो दिन बाद मैं अपने शहर पहुँचा और आते ही मैं उसके घर गया।

वह आज फिर अपने गार्डन में पौधों को पानी दे रही थी। मुझे देखते ही उसने कहा– 'बड़ी जल्दी मेरा ख़त मिल गया तुम्हें। मैं तो सोच रही थी कि तुम्हारा सही पता नहीं है मेरे पास।'

'ख़त देर सबेर सही पते पर पहुँच ही जाते हैं, बशर्ते उन्हें सही समय पर लिखा गया हो।' मैंने जवाब दिया।

'तुम्हारे चेहरे पर अभी सफ़र की थकान पुती है, तुम कल आओ। मैं तुम्हें कल तुम्हारी पसंद का खाना खिलाऊँगी।' उसने मेरी तरफ़ पीठ करके कहा।

‘आपको क्या पता मुझे क्या पसंद है ?’ मैंने बेरुख़ी से पूछा।

‘इस सवाल का जवाब तुम्हें कल मिल जाएगा। कल तक इंतज़ार करो।’

‘एक कप चाय मिलेगी ?’ मैंने पूछा।

‘नहीं मिलेगी, क्योंकि यदि आज मैंने तुम्हें चाय पिला दी तो कल मैं तुम्हारी पसंद का खाना नहीं बना पाऊँगी।’ उसने हँसते हुए कहा।

उसके बाद मैंने कोई सवाल नहीं किया और सीधा अपने कमरे पर चला आया।

सफ़र की थकान से नींद अच्छी आई, मगर रात को सोने से पहले मैं यही सोचता रहा कि मुझे खाने में क्या पसंद है, उसे कैसे मालूम होगा ?

सुबह उठा तो मुझे एक एसएमएस मिला ‘आज राजमा-चावल बनाए हैं ! जब आओ तो थोड़ी दही लेते आना।’

मैं विस्मय से भर गया था, क्योंकि कल रात ही यह सोच रहा था कि बहुत दिन से राजमा-चावल नहीं खाए।

‘व्हॉट ए नाइस टेलीपैथी !’ मैंने मन ही मन यह कहा।

मैंने उस दिन उसके घर पर खाना खाया। खाना बेहद स्वादिष्ट बना था, इसलिए मैंने यह नहीं पूछा कि उसे मेरी पसंद का कैसे पता चला, जबकि इस बारे में कभी हमारी बात भी नहीं हुई थी। खाना ख़त्म करके मैं अपने बर्तन उठाकर सिंक में रखने चला तो उसने कहा– 'केवल बर्तन रखने भर से काम नहीं चलेगा, आपको अपने बर्तन ख़ुद साफ़ करके रखने होंगे। यह घर आश्रम व्यवस्था पर चलता है, अपने जूठे बर्तन ख़ुद साफ़ करने होते हैं।'

मुझे यह सुनकर अच्छा ही लगा, क्योंकि जहाँ पारदर्शिता होती है, वहाँ अपनी एक सहजता भी होती है और हम औपचारिकताओं में नहीं फँसते हैं। बर्तन साफ़ करने के बाद मैंने वहीं किचन में दो कप चाय बनाई और उन्हें ट्रे में रखकर बाहर दालान में ले आया। वह वहीं बैठी हुई थी।

'तुम तो इस घर के साथ एकदम घरेलू हो गए। बर्तन साफ़ करने के लिए कहा था और चाय भी बना लाए।' उसने हँसते हुए कहा।

'मुझे खाना खाने के बाद एक कप चाय की अक़्सर तलब होती है, इसलिए बना ली।' मैंने मुस्कुराते हुए कहा।

'हम्म ! आदत बुरी नहीं है बशर्ते इसके लिए किसी पर आश्रित न रहना पड़े।' उसने चाय की एक चुस्की लेकर कप नीचे रखते हुए कहा।

'मैं प्रायः किसी पर आश्रित नहीं होता हूँ। प्रेम ज़रूर अपवाद हो सकता है इसका।' मैंने कहा।

‘हाँ! प्रेम में आश्रय अनिवार्य हो जाता है, इसलिए प्रेम में हर कोई अपने हिस्से का निर्वासन भी झेलता है।’ यह कहते हुए वह थोड़ी गंभीर हो गई।

‘मनुष्य प्रेम क्यों करता है?’ मैंने सवाल किया।

‘इसका जवाब वह बेहतर दे सकता है, जिसने प्रेम किया हो। मैंने प्रेम को देखा है, प्रेम को पढ़ा है, प्रेम को सुना है, मगर प्रेम की हर बात में इतना गहरा विरोधाभास है कि मैं किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पायी। तुम्हें यह सवाल कम-से-कम दो लोगों से करना चाहिए। एक वह जो प्रेम में हो और दूसरे वह जो प्रेम में असफल रहे हों।’

‘क्या प्रेम में सफलता या असफलता जैसे मानक वास्तव में लागू होते हैं?’ मैंने फिर से एक नया प्रश्न किया।

‘अलबत्ता तो मेरे पास जब वह अनुभव नहीं तो मैं उस पर बोलने की अधिकारी नहीं हूँ, मगर हाँ! मेरी एक आम राय ज़रूर हो सकती है। प्रेम में सफलता और असफलता होती है। यह प्रचलित अवधारणा है, मगर इसका कोई एक सर्वमान्य पैमाना नहीं हो सकता है। मसलन जो मेरे लिए प्रेम में सफलता हो वही तुम्हारे लिए असफलता हो सकती है, इसलिए प्रेम को लेकर सबके अनुभव भिन्न होते हैं। यहाँ तक कि जो प्रेम में विलग हो गए हों, आप उन दो लोगों की पीड़ा का भी एक तयशुदा पैमाने पर मूल्यांकन नहीं कर सकते हैं।’

‘हम्म! आपने प्रेम क्यों नहीं किया?’ मैंने अपना तीसरा प्रश्न किया।

‘यह एक बचकाना सवाल है, इसलिए इसका मैं एक बचकाना ही जवाब दूंगी, जो कि थोड़ा फ़िल्मी क़िस्म का है– प्यार किया नहीं जाता, प्यार हो जाता है।’ यह कह कर वह खिलखिला कर हँस पड़ी।

मगर न जाने क्यों मुझे इस बात पर हँसी नहीं आई।

बहुत दिन बाद मिलने पर मैंने पूछा– ‘क्या आप मुझे बिल्कुल भूल गई हो?’

‘बिल्कुल तो नहीं। कभी-कभी याद आयी तुम्हारी, मगर वह याद किसी एक सूत्र में नहीं बाँधी जा सकती है। इसलिए मैं यही कहूँगी, हाँ! मैं तुम्हें थोड़ा-सा भूल गई थी।’

‘क्या याद आने के लिए किसी को भूल जाना ज़रूरी होता है।’ मैंने पूछा।

‘याद आने के लिए किसी को भूल जाना नहीं, मगर उससे थोड़ी दूर निकल जाना पड़ता है कई दफ़ा। नज़दीकियों की घुसपैठ में याद उपेक्षित महसूस करती है।’ उसने जवाब दिया।

‘आप मुझे किस तरह से याद करती हो?’ मैंने मुस्कुराते हुए पूछा।

‘मैं तुम्हें ठीक वैसे करती हूँ याद
जैसे कोई याद करता है अपनी स्कूल की बेंच
या फिर जैसे कोई याद करता है
सफ़र के दौरान देखे गए मील के पत्थर’

मैंने कहा– ‘यह तो कविता हो गई।’

‘याद, दरअसल एक कविता ही है और हमारे अनुभव एक कठिन गद्य के जैसे हैं, जिनका असामयिक करना होता है सबको पाठ।’ उसने मुस्कुराते हुए कहा।

‘अच्छा, तुम बताओ, तुम मुझे किस तरह करते हो याद?’ उसने प्रतिप्रश्न किया।

‘हम्म !

मैं आपको कभी याद नहीं करता, मगर मुझे आपकी कुछ बातें अक़्सर याद आती हैं। जैसे एक बार आपने कहा था कि किसी को भूल जाना किसी को याद रखने से मुश्किल काम है। इसलिए मैं आज तक आपको भूल नहीं पाता हूँ।’

‘अच्छा कल मैंने एक गीत लिखा है, क्या तुम सुनना चाहोगे ?’ उसने कहा।

‘बिल्कुल, मगर एक शर्त है कि आप इसे पढ़ोगी नहीं गुनगुनाओगी।’

‘ठीक है तो सुनो–

बसंत तुम कौन देश से आए हो
बसंत तुम क्या उतने अपने हो जितने पराए हो
बसंत क्या तुम्हें मेरी चिट्ठी मिली थी
जिसमें लिखा था कल मैं फिर किसी से मिली थी
बसंत इस बार तुम्हारे साथ आयी उदासी है
क्या पतझड़ को अब भी तुम्हारी तलाश बाक़ी है

बसंत मेरे लिए कोई तो पैग़ाम होगा
उन ख़तों को मेरा पता मिला क्या
जिन पर मेरा नाम होगा

बसंत तुमको भी जाना होगा
बस इतना बताओ फिर कब आना होगा
तुम जब आओगे

मैं यहाँ न मिलूँगी
इस बरस मैं पतझड़ में खिलूँगी

बसंत तुम कौन देश से आए हो... '

'कैसा लगा?' उसने उत्सुकता से पूछा।

'ये गीत कुछ-कुछ ऐसा है जैसे दूर कहीं पर्वत से ठंडी हवा आयी हो और आपने इसे कुछ इस तरह से गाया, जैसे कोई नदी अपना पहला ख़त ग्लेशियर के नाम लिखकर समंदर से मिलने निकल पड़ी हो।' यह कहते हुए मैंने एक गहरी सांस ली।

वह अपनी अनुपस्थिति में भी गहराई के साथ उपस्थित रहती थी। न जाने क्यों मुझे ऐसा लगता था कि जब मैं कहीं अटक या भटक जाता हूँ तो उसके पास मुझे उस दशा से निकालने के प्रभावी उपाय मौजूद होते हैं।

उन दिनों मैं आर्थिक रूप से थोड़ा कमज़ोर था, हूँ तो अभी भी। मगर तब हालत थोड़ी टाइट थी। मैं अपने संपर्कों से पैसे ले चुका था और अभी लौटाने की कोई जुगत नहीं बन रही थी। दोस्तों ने मित्रता में सावधि निवेश समझ कर दे दिये थे, मगर मुझे लौटाने की फ़िक्र भी रहती थी।

मैंने बड़ी हिम्मत जुटाकर एक दिन उससे कहा– 'मुझे कुछ रुपयों की ज़रूरत है, क्या आप कुछ मदद कर सकती हो?'

उसने कहा– 'कितने चाहिए?'

मैंने कहा– 'जितने सुविधा से दे सको?

'ठीक है कल मिल जाएँगे, मगर मेरी एक शर्त होगी।' उसने कहा।

'क्या?'

'इन पैसों पर कभी बात न होगी और ये पैसे तुम मुझे लौटाओगे, तो भी मुझे सूचित न करोगे।'

फिर हमने अपने-अपने अकाउंट नम्बर की अदला-बदली की। अगले दिन मेरे खाते में कुछ पैसे जमा होने का एसएमएस आ गया। हालाँकि जितनी मुझे ज़रूरत थी, उससे यह रक़म एक हज़ार ज़्यादा थी।

उसके बाद मैंने कभी उससे कोई पैसा नहीं लिया, क्योंकि उसकी शर्त मुझे थोड़ी विचित्र लगी थी और मैंने पहली फ़ुर्सत में वह पैसे लौटा दिए।

उसके बाद हमारी पैसे को लेकर कोई बातचीत कभी नहीं हुई।

मैंने एक दिन पूछा– 'आपके हिसाब से पैसा आदमी की कितनी बड़ी ज़रूरत है?'

'ठीक उतनी बड़ी जितनी एक झूला पुल की ज़रूरत किसी पहाड़ी नदी पर होती है।' उसने कहा।

'क्या बिना पैसे के रहा जा सकता है?' मैंने दूसरा सवाल किया।

'बिल्कुल रहा जा सकता है, मगर पैसा आदमी के बिना नहीं रह पाता है।' उसने मुस्कुराते हुए जवाब दिया और मेरी तरफ़ अपनी पीठ कर ली।

उसके हाथ के ऊपरी तरफ़ उभरी हुई नसें साफ़ दिखती थीं। उभरी नसों में भले ही कलात्मक सौंदर्य का अभाव था, मगर उन्हें देख मुझे यह आश्वस्ति हो गई थी कि ये जिस चीज़ को हासिल करने की ज़िद ठान ले उसे येन-केन-प्रकारेण हासिल कर ही लेगी। मेरे सन्दर्भ में वह हासिल करने की बजाए मुझे मुक्त रखने में यक़ीन करती थी, इसलिए मैंने अपनी यह स्थापना कभी उसे बताई नहीं।

निजी तौर पर मैं चेहरे से पहले हाथों की ख़ूबसूरती पर मुग्ध होता था। किसी से मिलता तो सबसे पहले उसके हाथों पर मेरी नज़र जाती थी और ये अनायास होता था। हालाँकि अपनी इस आदत को मैं भरसक बचाने की कोशिश करता, मगर फिर भी कभी-कभी ऐसा देखते हुए पकड़ा भी जाता।

उसने एक दिन मुझसे पूछा– 'हाथों को इतने ग़ौर से क्या देखते हो?'

मैंने कहा– 'कुछ नहीं, मुझे आदत है बस देखने की।'

हाथों पर उभरी हुई नसें देखकर एकबार मेरी इच्छा हुई कि मैं उन्हें एक डॉक्टर की तरह छूकर देखूँ, जैसे वह नस में कोई इंजेक्शन लगाने से पहले मुआयना करता है कि ये नस दवा ले जा सकेगी या नहीं।

बाद में मैंने अपनी इस इच्छा को निरर्थक पाया, क्योंकि यह कोई कलात्मक मूल्यांकन नहीं करती थी। इसमें स्पर्श की चाह अधिक थी, इसलिए मैं जल्द इससे मुक्त हो गया।

बॉडी लैंग्वेज को पश्चिम में विज्ञान नहीं माना गया है। भारतीय ज्योतिष ज़रूर कुछ देह चिह्नों की व्यवहारात्मक व्याख्या करता है, मगर मुझे वह अधिक प्रभावित नहीं करता।

उससे हाथ मिलाते वक़्त मैंने यह महसूस किया कि वह हस्तरेखाओं की टकराहट से बचती है। मैंने इसका कारण पूछा तो उसने हँसते हुए कहा– 'मैं किसी के प्रारब्ध से अपना भाग्य मिलाने में यक़ीन नहीं करती हूँ।'

‘आप मुझे भूल गईं, क्योंकि मैंने ऐसा करने के आपको पर्याप्त मौके दिए।’

‘किसी को भूल जाना कैसे आसान बनाया जा सकता है, यह मैंने आपसे ही सीखा है। आप अक़्सर एक बात कहा करती थीं कि समय किसी के लिए नहीं रुकता है, मगर समय के अलावा हम ज़रूर कुछ हिस्सों में रुक जाते हैं। लाख कोशिशें करने पर भी हम उनसे नहीं निकल पाते।’

मैंने तब पूछा था– ‘क्या इस हिस्से को हम याद कहते हैं।’ उसने कहा– ‘याद कहना एक सुविधा भर है, वरना हमारे अटके हुए पल याद नहीं हो सकते हैं। वह एक महीन फाँस की तरह होते हैं, जो महसूस होते हैं, मगर नज़र नहीं आते हैं।’

‘अब जब आप मुझे भूल गईं तो मैंने ख़ुद को एक बार टटोल कर देखा कि मेरे अंदर ऐसा क्या हो सकता है, जिसे बार-बार याद किया जाए? सच कहूँ तो मैं कोई एक चीज़ ऐसी नहीं तलाश पाया, जिसे कह सकूँ कि इसके लिए मुझे याद रखा जाना चाहिए। जबकि आपकी बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जिनके कारण मैं आपको शायद ही कभी भूल पाऊँ।’

उन दिनों जब मैं नया-नया आपके सम्पर्क में आया था, तब मुझे लगता था कि आपको प्रभावित करने की कोई आवश्यकता नहीं है और यह बात सच भी थी। आप अपने स्वभाव में जीने की आदी थीं। मैंने जितना आपको जाना, आप किसी से प्रभावित नहीं थीं। यहाँ तक कि मैंने आपको कभी भावुक होकर अपने अतीत

को याद करते हुए भी नहीं देखा। मुझे नहीं पता था कि अतीत में कौन-कौन आपके मित्र रहे होंगे। आपने एक दिन कहा भी था कि मैं अतीत को निजी विषय मानती हूँ, इसलिए उसका अपवाद स्वरूप ही कभी संदर्भ के लिए प्रयोग करती हूँ।

किसी को भूल जाना या याद रखना मात्र एक भावुक प्रक्रिया नहीं है। इस बात को सोचते हुए ज़रूर भावुक हुआ जा सकता है कि कोई कैसे हमें भूल गया, जबकि हम कभी उसकी स्मृतियों का अच्छा ख़ासा हिस्सा क़ब्ज़ाए हुए थे। मैं आपसे कुछ बातें करना चाहता था, मगर उनके लिए एक उपयुक्त समय की तलाश में कभी वह बातें आपसे कह नहीं पाया। समय का कोई आकार नहीं होता है, उसे उपयुक्त अपनी प्रतिबद्धता से बनाया जाता है, मैं यह एक बड़ी व्यावहारिक बात भूल गया था।

शायद मैं यह चाहता था कि आप मुझे भूल जाओ। अगर आप मुझे याद रखती तो मुझे नई स्मृतियाँ बनानी पड़तीं। यह बड़ी विचित्र बात है कि आप जिससे राग पाल लेते हैं, उसी से एक दिन दूर होना चाहते हैं। ये शायद कुछ अंदरूनी डर होते हैं, जो एक सीमा के बाद हमारा हाथ पकड़ वापस खींच लेते हैं।

आपके समक्ष मेरे ज्ञात डर और संकोच लगभग शून्य थे और कमोबेश इसी स्थिति में मैंने आपको भी पाया था। हो सकता है कि यह भूलना और याद करना एक-दूसरे के पूरक हों, जैसे आप मुझे भूल गई और मैं आपको याद कर रहा हूँ। आप मुझे शायद ही कभी याद करोगी, यह बात मुझे ठीक से पता है, मगर मैं एक भोर के स्वप्न की तरह किसी दिन ज़रूर आपको दिखाई दूँगा। उसके बाद आपकी नींद और गहरी होगी, ऐसी मुझे उम्मीद है।

आपको स्वप्न याद नहीं रहते हैं, यह एक अच्छी और ख़राब बात ज़रूर है।

उसकी बातों को याद करते हुए कभी बासीपन नहीं लगा। उसकी एक बात के अनेक संदर्भ होते थे। एक बात एक वक़्त पर थोड़ी चुभती प्रतीत होती, तो वही बात दूसरे वक़्त में रास्ता दिखा जाती।

मैं यह तो नहीं कहूँगा कि वह भविष्य द्रष्टा थी, मगर वह कालबोध से मुक्त ज़रूर थी। इसलिए उसकी बातों में एक चैतन्यता हमेशा विद्यमान रहती थी। उसको सुनते हुए मैं निहितार्थ विकसित नहीं करता था, मगर मैं सिलसिलेवार उसकी बातों को एक जगह तह लगाकर ज़रूर रखता जाता। जब मैं बहुत व्यस्त होता तब उसकी बातों की तह खोलकर पढ़ता। ख़ालीपन में न वह और न उसकी बातें समझ में आती थीं। ख़ालीपन में उस पर प्यार आता था और व्यस्तता में उसके प्रति आदर पैदा होता था।

तब उस पर ग़ुस्सा कब आता था? उस पर ग़ुस्सा मुझे एकाध बार ज़रूर आया, मगर बाद में मुझे वह इसलिए हास्यास्पद लगा, क्योंकि उस गुस्से में हम दोनों के अति विश्लेषण आपस में टकरा रहे होते थे। मैं उसे दोस्त से बढ़कर इसलिए समझ सकता हूँ, क्योंकि कभी हमारे अहम आपस में नहीं टकराए।

एक बार मैंने उससे पूछा– 'यदि मैं आपके जीवन में स्थायी रूप से होता तो क्या तब भी आपका जीवन ऐसा ही होता?'

इसका जवाब देने से पहले उसने मुझसे कहा– 'पहले मेरे जीवन के 'ऐसा' तत्व की व्याख्या आप कीजिए।'

मैंने कहा– 'मैं अनुभूति की व्याख्या करने में प्रायः असमर्थ रहा हूँ। इस 'ऐसा' को आप वर्तमान समझ लीजिए।'

'तुम यदि मेरे जीवन में स्थायी रूप से होते तो मेरा जीवन ऐसा बिल्कुल नहीं होता। मगर मैं भी यह कहना चाहती हूँ कि इस बात की कोई प्रत्याभूति नहीं दे सकता है कि तुम्हारे होने से मेरा जीवन वर्तमान से बेहतर होता या कमतर होता। इसलिए इस तरह सोचना मुझे व्यर्थ का प्रयोजन लगता है।'

इसके बाद मैंने इस बात को यहीं ख़त्म कर दिया।

हमारी बातों में एक समय निजता की गहरी घुसपैठ हो गई थी, इसलिए वह बातें बाद में एक समय बाद थोड़ी बेचैन भी करने लगी थीं। हम लोक के विषयों से प्रायः मुक्त हो गए थे, मगर इसका यह अर्थ भी नहीं है कि हमारी बातों से लोक अनुपस्थित हो गया था। हमारी बातों में लोक हास्यबोध के रूप में उपस्थित रहता था।

मसलन एक दिन उसने पूछा कि– 'आपको शादी ब्याह की पार्टी को देखकर कैसा महसूस करते हो?'

मैंने कहा– 'मुझे लगता है कि उत्सव मनुष्य की ज़रूरत है, इसलिए मैं इसकी आलोचना नहीं करूँगा।'

'समझ गयी तुम्हारा यह नकार सबसे बड़ी आलोचना है।' उसने हँसते हुए कहा।

फिर देर तक बेतुकी बातों पर हँसते रहे हम।

उसके साथ एक अजीब-सा रिश्ता था मेरा। कभी धुर वैचारिक शुष्कता से भरा हुआ तो कभी मानवीय प्रेम की तरलता से सराबोर। यदि मुझसे कोई पूछे कि वह तुम्हारी क्या लगती है तो मेरे पास यक़ीनन इस बात का लौकिक जवाब नहीं होगा। एक समय के बाद मुझे लगा कि इस मेल-मिलाप को किसी रिश्ते के आवरण में लपेटना इसकी नैसर्गिकता का अपमान होगा।

इसमें दोस्ताना हक़, अव्यक्त प्रेम और परिपक्वता का आदर शामिल था, इसलिए इसे किसी एक संबोधन में बाँधने की कभी ज़रूरत महसूस नहीं हुई। कुछ सम्बन्ध आपके जीवन में अस्तित्व का एक अर्थपूर्ण हस्तक्षेप होते हैं। मेरे जीवन में भी यह वही हस्तक्षेप था।

किसी की अनुपस्थिति में यदि आपको उसकी बातें याद रह जाती हैं तो इसका एक अर्थ यह भी होता है कि वह आपके अंदर कहीं थोड़ा ज़रूर बच गया है, जो ख़त्म नहीं हो रहा है। उसकी बातों के कोई सिरे आपस में नहीं मिलते, मगर यदि मैं उन्हें सोचने बैठ जाऊँ तो मुझे वे एक तिलिस्मी उपन्यास के कथानक जैसी लगने लगती है। मैं उनमे बिंध जाता हूँ।

मैं अक़्सर किसी ऐसे रिश्ते की कल्पना किया करता था जिसमें कोई लौकिक आग्रह और बंधन ना हो? जो अपनी समग्रता में उपस्थित रहे, मगर जिसका लेशमात्र भी भार कभी महसूस न हो। उससे जुड़ना कुछ अर्थों में यथार्थ में उस कल्पना को जीने का अवसर था, जहाँ संबोधन के कोई दबाव नहीं थे, कोई

असुरक्षाएँ नहीं थीं और सबसे बड़ी बात, वादों और बातों का कोई एक तयशुदा पैटर्न नहीं था।

मैंने एक बार उससे पूछा कि– 'क्या पुरुष किसी रिश्ते में ज़िम्मेदारी लेने से भागता है?'

'यह सवाल तुम्हें ख़ुद से पूछना चाहिए।' उसने हँसते हुए कहा।

'मेरे पास इसका एक जवाब नहीं है। मैं इसके पक्ष और विपक्ष दोनों में तर्क दे सकता हूँ।' मैंने कहा।

'मुझे लगता है, यहाँ बात पुरुष और स्त्री की नहीं है, ज़िम्मेदारी किसे प्रिय होती है? मनुष्य मूलतः मुक्त रहना चाहता है। जहाँ तक किसी रिश्ते का प्रश्न है तो स्त्री ज़िम्मेदारी को मुक्ति का मार्ग मानती है, इसलिए उसे एक बंधन अच्छा लगता है।' उसने गम्भीर होकर जवाब दिया।

थोड़ी देर चुप रहकर वह बोली– 'और हाँ! तर्क की सबसे अच्छी और ख़राब बात यही होती है कि उसे मन की अनुकूलता के साथ कहीं भी प्रयोग किया जा सकता है। इसलिए मुझे तुम्हारी मनःस्थिति जानकर कोई आश्चर्य नहीं हुआ, बल्कि अच्छा लगा, कम-से-कम तुमने एक ईमानदार बात कही।

उसकी बातें समस्त प्रश्नचिह्नों पर पूर्ण विराम लगाने में समर्थ होती थीं और जिन बातों पर प्रश्नचिह्न बच जाते, मैं उन बातों को जीवन के प्रश्न समझ अपने ढंग से सुलझाता रहता। यह बात उसे पता होती कि कुछ जगह मैं सहमत या संतुष्ट नहीं हूँ, मगर यही वह चाहती थी। बातों ही बातों में उसने एक बार कहा था– 'किसी से सम्पूर्ण सहमति बौद्धिक मृत्यु है।'

रात की बातों की एक ख़ूबी यह रहती थी कि उन पर शब्दों के नैतिकता भरे पैबंद नहीं लगाने पड़ते थे। ऐसा नहीं था कि रात की बातें अमर्यादित होती थीं, मगर दिन की अपेक्षा रात की बातें अधिक सहज और मुक्त होती थीं। दिन की बातों में कोई कृत्रिमता नहीं होती थी, मगर अंततः वे एक सीमा के बाद अपना सीमांकन ख़ुद कर लेती थीं।

दिन की बातें निष्कर्षों की गुलाम थीं, तो रात की बातों पर ऐसे कोई बंधन लागू नहीं होते थे। रात की बातें मुक्त होती थीं, उन पर कल्पनाओं के पंख लगे होते थे। वहाँ शरारत को कहने के लिए हास्य की मदद की आवश्यकता नहीं थी। दिन की बातों में एक अघोषित डिस्क्लेमर बंधा होता था।

बात केवल दिन और रात की नहीं, बल्कि मौसम के हिसाब से भी वे बातें अपनी अंतर्वस्तु का निर्धारण करती थीं। मसलन सर्दियों में समंदर, गर्मियों में पहाड़ और बरसात में छोटे क़स्बे बातचीत के इर्द-गिर्द चौकड़ी जमा कर बैठ जाते थे। दिन की बातों में लोक मुखर रहता था और रात की बातों में ऐन्द्रिक अनुभव अपना स्थान आरक्षित कर लेते थे।

मैंने उसकी बातों की अंतर्वस्तु का विश्लेषण कभी नहीं किया और मुझे पता था मेरी बातों पर भी कभी उसने विमर्श के चश्मे नहीं लगाए। हमारी बातों के कुछ हिस्सों में तात्कालिकता तो कुछ हिस्सों में अपना स्थायी जीवन दर्शन शामिल रहता था और अच्छी बात यह थी कि हम एक-दूसरे को संपादित नहीं करना चाहते थे। हमारे

पास विचार चुनने की सुविधा थी और वह भी बिना किसी आग्रह के।

ऐसा कई बार हुआ कि हमने अपने वर्ज़न बदले, मगर कभी दूसरे को यह बोध नहीं कराया कि आपने तब तो यह पक्ष लिया था। शायद हम दोनों यह बात जानते थे कि बातों की ख़ूबसूरती उनकी गति में ही अंतर्निहित होती है। एक स्थान पर रुकने से विचार भी स्थिर जल की तरह सड़ जाता है।

दिन में अक़्सर हमारी बहसें होती थीं और रात में हम अपने अनुभवों को विस्तार देते थे। दिन और रात की बातों में एक गरिमापूर्ण दूरी रखना हम एक-दूसरे के साथ ही सीख पाए। शब्दों की संवेदना और उनके चयन की सावधानी मैं तो कम-से-कम उसी के सत्संग से सीख पाया, अन्यथा पहले मैं चुस्त प्रतिक्रिया के चक्कर में कुछ विरोधाभासी कथन कहने को अपनी अधिकतम बौद्धिक योग्यता समझता था। उसके साथ रहकर मैं यह जान पाया कि किसी को विरोधाभास से या वाक्यों की जटिल संरचना से निरुत्तर कर देना कथित ज्ञान का विज्ञापन हो सकता है, मगर ये बोध का सच्चा प्रकटीकरण कभी नहीं होता है।

हमारे संवाद में एक आत्मीय ख़ुशबू बसती थी। मैं शब्दों को छूकर, सूँघकर उनका मंतव्य बता सकता था। उनका उद्देश्य सेल्फ़ का एक्सटेंशन था न कि किसी दूसरे के अर्जित ज्ञान को अतिक्रमित करके अपने अधिक बौद्धिक होने की स्थायी छाप प्रायोजित करना।

हमने कभी एक दूसरे से यह नहीं पूछा कि– ‘कैसे हो?’

क्योंकि हम जानते थे कि ये झूठ को प्रोत्साहित करने वाला प्रश्न है, जो अभिनेयता में जीने के लिए मनुष्य को बाध्य करता है। हम एक-दूसरे से एक बात अक़्सर पूछते थे– ‘अब नेक्स्ट क्या?’

शायद अपने अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगाने का हमारा एक मज़बूत प्रशिक्षण था। इसी कारण एक-दूसरे के साथ हमारी ख़ुद से गहरी मुलाक़ातें हो पायी और जब

सम्बन्धों का आकार रूपांतरित हुआ तो बातें सब महीन होकर गल गईं और हमारे पास बचे केवल सच्ची मुलाक़ातों के कुछ ईमानदार दस्तावेज़।

‘मुझे तुम्हारी देह-गंध पसंद है। ये मनुष्य की मनुष्य से उपयुक्त निकटता का सबसे नैसर्गिक माध्यम है, जिसके ज़रिए हम आत्मा के ताप को महसूस कर सकते हैं। ये हृदय की तलहटी में उतरे बसंत की पुरवाई को महसूस करने का भी एक ज़रिया हो सकती है बशर्ते आपका दिल ऊँचाई से न डरता हो।’ उसने एक दिन मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर एक साँस में यह बात कही।

उस दिन वह मुझे पहली बार थोड़ी भावुक नज़र आयी। उसकी आँखों में कोई कातरता तो मैं नहीं पढ़ सका, मगर हाँ! उस दिन उसकी आँखों में समंदर की सीपियों की तरह तरलता के साथ सूक्ष्म शैवाल तैरते नज़र आ रहे थे।

मेरे हाथ की रेखाओं को वह अपने एक नुकीले नाख़ून से ठीक वैसे कुरेद कर देख रही थी, जैसे उसके पास मेरी हस्तरेखाओं के भविष्य का एक स्थायी मानचित्र हो। मैं उस पल में उसकी समग्रता को देखकर उसे टोकने या कुछ पूछने का साहस खो बैठा था। उसने मेरी हृदय रेखा को आँखों के क्षितिज के पास लाकर देखा, फिर मेरी हथेली के ठीक मध्य अपनी उँगली से एक काल्पनिक वृत्त बनाया। यह घटना मेरी स्मृतियों में कुछ इस तरह दर्ज़ हुई जैसे सामवेद के किसी मंडल में ऋषि सूक्त दर्ज़ है।

हम थोड़ी देर हाथों में हाथ लिए मौन बैठे रहे। उसकी आँखें बंद थीं, मगर मैं अपलक उसकी आँखों की तरफ़ देख रहा था।

थोड़ी देर में उसने कहा– ‘मनुष्य ने अपनी कामनाओं से स्पर्शों को सबसे दूषित चीज़ बना दिया है, अन्यथा मनुष्य के पास संवदेना की दैहिक अभिव्यक्ति के लिए इससे पवित्र कोई अन्य साधन नहीं हो सकता है। हम कामनाओं के दास बनकर स्पर्शों को तीव्रता प्रदान करते हैं और अंततः स्पर्श अपना माधुर्य खो बैठते हैं।’

‘क्या तुम देह के मनोविज्ञान को ठीक-ठीक समझते हो?’ उसने पूछा।

मैं भौतिक वस्तुओं का अर्थ समझता हूँ और जहाँ तक देह के मनोविज्ञान का प्रश्न है, मेरे लिए देह एक माध्यम भर है, इसलिए मैं इसकी मुखरता को हमेशा एक क़दम पीछे रखने में यक़ीन रखता हूँ।’

‘तुम्हारे पास मेरे सवाल का सही जवाब नहीं था, मगर तुमने जो जवाब दिया उसका अपना एक गहरा मूल्य है, इसलिए मैं तुम्हारा आभार प्रकट करती हूँ।’ उसने मुस्कुराते हुए कहा।

उसने अपना एक बाल मुझे देकर कहा– ‘क्या तुम इसकी वास्तविक लम्बाई बता सकते हो?’

मैंने कहा– ‘मैं एक अनुमान लगा सकता हूँ।’

उसने कहा– ‘इसकी लम्बाई ठीक उतनी है, जितनी सूरज और चाँद की दूरी।’ इतना कहकर उसने अपने उस बाल को हवा में उड़ा दिया।

मैंने कहा– ‘यह तो कविता वाली बात हुई। इसमें वास्तविकता तो पीछे छूट गई है।’

‘जीवन में कुछ वास्तविकताएँ पीछे छूटने के लिए ही घटित होती हैं। हम वास्तविकता की पड़ताल करते रह जाते हैं और इस अंतराल में चीज़ें हमें छोड़ अपने गंतव्य की तरफ़ उड़ जाती हैं।’ उसने कहा।

मैंने इसके बाद उसके उस हवा में उड़ते हुए बाल को देखा, उसे देख मुझे लगा जैसे मेरी वर्तमान की वास्तविकता मुझसे दूर जा रही हो। उस दिन पहली बार मेरे जीवन में देह गंध की उपस्थिति दाख़िल हुई, जो कि बाद में मेरे जीवन की एक स्थायी स्मृति बन गई।

उसका एक दिन फ़ोन आया।

'आज मेरी तबियत थोड़ी ख़राब है, क्या तुम घर आ सकते हो?'

मैंने पूछा– 'क्या हुआ आपको?'

'ये बता पाना थोड़ा मुश्किल काम है कि मुझे क्या हुआ है, बस कल से किसी काम में दिल नहीं लग रहा है। जी करता है, एक ही जगह बैठी या लेटी रहूँ। शायद थोड़ा फ़ीवर भी है।' उसने अनमने मन से जवाब दिया।

'मैं कोई मेडिसन लेकर आऊँ?' मैंने पूछा।

'फ़िलहाल तुम आ जाओ, मेरे लिए तुम्हारा आना ही दवा का काम करेगा।' उसने कहा।

'ठीक है, आता हूँ शाम तक।' मैंने इतना कहकर फ़ोन काट दिया।

शाम को मैं उसके घर पहुँचा। पहली दफ़ा उस घर में एक अजीब-सी नीरवता पसरी देखी। घर में घुसते ही महसूस हुआ कि जब घर का मालिक बीमार होता है तो घर भी अनमना होकर उकड़ूँ बैठ जाता है।

मैं ड्राइंग रूम में घुसा ही था कि अंदर बेडरूम से आवाज़ आई कि 'इधर ही आ जाओ।' मैं पहली दफ़ा उसके बेडरूम में दाखिल हुआ था। कमरा छोटा था, मगर

आसपास बेहद ज़रूरी सामान था। बिस्तर पर मार्केज़ का उपन्यास 'एकांत के सौ वर्ष' अधखुला पड़ा हुआ था।

वहाँ एक छोटी कुर्सी भी रखी थी, मगर उसने हाथ से इशारा किया, इधर (बिस्तर) ही बैठ जाओ।

वह उस वक़्त अपनी डायरी में कुछ लिख रही थी। जब उसने लिखना ख़त्म किया तो मैंने पूछा– 'अचानक कैसे तबियत ख़राब कर ली आपने?'

उसने कहा– 'चीज़ें अचानक से ही ख़राब होती हैं। किसी पेंटर से पूछिए, वह इस सवाल का बेहतर जवाब दे सकता है। कई बार तस्वीर मुकम्मल होने से ठीक पहले ख़राब हो जाती है। यह 'अचानक' मनुष्य के जीवन की बड़ी अप्रत्याशित मगर अनिवार्य घटना है। कभी-कभी अचानक ही हम किसी रिश्ते में अर्थ खो बैठते हैं, फिर ताउम्र उसकी वजह तलाशते रहते हैं, मगर वह 'अचानक' इतने तयशुदा ढंग से घटित होता है कि वह अर्थ हम फिर कभी दोबारा नहीं तलाश पाते हैं।'

'आप हर बार सवाल का जवाब इतना फ़िलॉस्फ़िकल होकर क्यों देती हैं?' मैंने मुस्कुरा कर पूछा।

'मेरे जवाब तुम्हें फ़िलॉस्फ़िकल लग सकते हैं, मगर मेरे जवाब तुम्हारे सेल्फ़ को संबोधित होते हैं। मुझे लगता है वह इस भाषा के जवाब बेहतर समझता है। सामान्य बातचीत के जवाब शब्दों का अपव्यय हैं, वे औपचारिकता से लबरेज़ होकर अनाथ भटकते हैं।' उसने कहा।

फिर हालचाल जानने वाला सवाल अनाथ रह गया।

शाम का वक़्त था। मुझे चाय की तलब लगी थी इसलिए मैंने ख़ुद दो कप चाय बनाई। उसके घर पर मुझे अब किसी क़िस्म का औपचारिक संकोच नहीं होता था।

हम तक़रीबन तीन-चार घण्टे तक दर्शन, मनोविज्ञान, सिनेमा आदि पर बातें करते रहे। मुझे लगा ये बातें ही उसके लिए दवा का काम कर रही थीं। मैंने घड़ी की तरफ़ देखा तो नौ बज चुके थे।

मैंने कहा– 'अब मैं चलता हूँ।'

उसने भी घड़ी की तरफ़ देखा और कहा– 'समय के अपने षड्यंत्र होते हैं।'

मैं चलने के लिए उठने ही वाला था कि उसने मेरा हाथ अपने दोनों हाथों के बीच रखकर कहा– 'तुम क्या आज रात यहाँ ठहर सकते हो?'

मैं इस सवाल का सम्भावित उत्तर तलाश ही रहा था कि मेरे मुँह से अचानक निकल गया– 'हाँ, क्यों नहीं।' हालांकि बाद में मुझे लगा कि मैं ये बात जल्दबाज़ी में कह गया।

मेरे रुकने की बात पर उसे अच्छा लगा, मगर उसने कहा– 'हालांकि तुम समझदार हो, मगर फिर भी यह ज़रूर कहूँगी कि तुम आज की रात यहाँ रुकने के कोई निहितार्थ मत विकसित करना।'

'आप निश्चिन्त रहिए!' मैंने मुस्कुराते हुए जवाब दिया।

उस रात मैं उसके घर ही रुक गया।

वह रात चेतना के विलक्षण अनुभवों की दृष्टि से मेरे लिए एक अद्भुत रात थी।

डिनर करने के बाद दो बार चाय पी गई। मुझे उसके घर की थोड़ी अस्त-व्यस्तता अच्छी लगी। अमूमन महिलाएँ हर चीज़ को क़रीने से सजा कर रखने में माहिर होती हैं, मगर उसका बेडरूम देखकर लगा उसकी दिलचस्पी चीज़ों को अपने नैसर्गिक रूप में रखने की अधिक है।

उसके सिरहाने किताब और डायरी थी। कमरे की दीवारों पर दो पेंटिंग टँगी थीं, मगर उन पर जमी धूल से लग रहा था कि, वह पेंटिंग फ्रेम से निकलकर उसके साथ रहने चली आई थी और दीवार पर ख़ाली फ्रेम टँगा रह गया था।

बातचीत के दौरान ऐसा कई बार हुआ कि एक पॉज़ आ गया। ऐसा लगा जैसे हमारी सारी बातें समाप्त हो गई हों।

वह एक बातूनी महिला नहीं थी, मगर उसकी 'विट' लाजवाब थी।

मैंने पूछा– 'आप अकेली रहती हैं? आपका मन लग जाता है?'

'अकेला रहने की आदत डालनी होती है और मन को मैं इतनी छूट नहीं देती हूँ कि वह मुझे ड्राइव करने लगे। मैं मन को ड्राइव करने में यक़ीन रखती हूँ।' उसने दृढ़ता से जवाब दिया।

'मैंने बहुत पहले यह छोटी कविता पढ़ी थी, आपको भी शायद पसन्द आए'–

'अकेला रहने की आदत विकसित करना

सामाजिक पशुता से बचने का

एकमात्र उपाय है'

'हाँ, यह एक सच्ची कविता है।' उसने मुस्कुराते हुए कहा।

'मनुष्य भीड़ क्यों चाहता है?' मैंने सवाल किया।

'मुझे लगता है एक अपरिभाषित एकांत हमारे अंदर बसता है, जो हमें डराता है अक़्सर। मनुष्य उससे बचने के लिए अपने इर्द-गिर्द एक परिचय की भीड़ देखना चाहता है। जिस दिन आप अपने एकांत को परिभाषित करना सीख जाते हैं, उस दिन आप अपनी आंतरिक भीड़ में गुम हो जाना अधिक पसन्द करते हैं।'

'आंतरिक भीड़! वह क्या होती है?' मैंने पूछा।

'हमारी चेतना के सूत्रों की भीड़, हमारी सम्वेदना के जमघट की भीड़, जो हमसे बात करना चाहती है और हम भीड़ के चलते उसके लिए हमेशा अनुपलब्ध रहते हैं। जिस दिन हम उसके लिए उपलब्ध हो जाते हैं, फिर मनुष्य हर क़िस्म की भीड़ में ख़ुद को अकेला पाता है। इनफ़ैक्ट उसकी भीड़ में दिलचस्पी ही मर जाती है।' उसने जवाब दिया।

'आई थिंक रात काफी हो गई है, अब हमें सो जाना चाहिए। मैं रात में बारह बजे के बाद केवल ख़ुद के साथ जागना पसन्द करती हूँ।' उसने बिस्तर की सिलवटें साफ़ करते हुए और किताबें समेटते हुए कहा।

'ठीक है!' मैंने सहमति जताई।

'मगर मैं आज यहाँ रुकने के हिसाब से नहीं आया था। मेरे पास ब्रश भी नहीं है और कपड़े भी नहीं हैं। ब्रश तो मैं उँगली से कर लूँगा, मगर कपड़ो में इन्हीं में सोना पड़ेगा।' मैंने थोड़ा अनमना होकर कहा।

'कोई बात नहीं। सुविधाएँ मनुष्य को पराश्रित भी बनाती हैं। कभी-कभी सुविधाशून्य होकर भी जीना आना चाहिए।' उसने हँसते हुए जवाब दिया।

'जब मैं उँगली से ब्रश करके लौटा तो वह कम्बल ओढ़कर लेट चुकी थी। मुझे कहाँ सोना होगा? आप एक कम्बल दे दीजिए, मैं ड्राइंग रूम के दीवान पर सो जाता हूँ।' मैंने कहा।

'क्यों? एक स्त्री के निकट सोने में तुम्हें भय लगता है क्या? क्या तुम भी उन लौकिक मान्यताओं में अटके हुए हो कि एक स्त्री और पुरुष कभी देह से इतर साथ नहीं सो सकते हैं?' उसने हँसते हुए पूछा।

'मुझे कोई असुविधा नहीं है, मैं तो आपकी सुविधा देखकर कह रहा था।' मैंने कहा।

'मेरी सुविधा इसी में है कि तुम यहीं साथ ही सो जाओ। सच बात तो यह है कि इस घर में दूसरा कम्बल नहीं होगा और अगर होगा भी तो इस स्थिति में नहीं होगा कि उसे ओढ़ कर सोया जा सके।'

'मैं चाहती हूँ कि तुम्हारी देह गंध से मेरा यह कम्बल सुवासित हो जाए, ताकि मैं उसे अपने एकांत में सामने बैठाकर कुछ ग़ैर-दुनियावी बातें कर सकूँ।' उसने मुस्कुराते हुए कहा।

इसके बाद मैंने कोई सवाल नहीं पूछा और मैं उसके साथ उसी कम्बल में सो गया। सोने से पहले हमने एकाध बातें सपनों के मनोविज्ञान को लेकर कीं।

रोचक बात यह थी, उस रात मुझे कोई सपना नहीं आया और नींद भी बेहद गहरी

आयी। जिस नींद की तलाश में मैं अक़्सर कल्पना में सोचा करता था, वह नींद मुझे उस रात हासिल हुई।

सुबह उठते ही मेरे मन में सबसे पहले यह ख़याल आया– 'कल्पना सच से ख़तरनाक चीज़ है।'

उसके हाथ की उँगलियाँ एकदम परफेक्ट 'लेडीफ़िंगर' शेप के जैसी थीं। अपनी एक लाइब्रेरी रिसर्च में मैंने पाया था कि जिस स्त्री की उंगली लेडीफिंगर शेप में होती हैं , वह एक रिलेशन में कमिटेड और समर्पित होती है।

ऐसी स्त्रियाँ परफेक्ट हाउसवाइफ सिद्ध होती हैं। गृहस्थी में भी वह लविंग एन्ड केयरिंग मानी जाती हैं।

इन तमाम देह लक्षणों के बावजूद मेरे मन में उससे शादी जैसी संस्था पर बात करने का कभी विचार न आया। हालाँकि ऐसा भी नहीं था कि यह मेरे कौतूहल का विषय था।

हम जिस बिंदु पर मिले थे, वहाँ से जो यात्रा आरम्भ होती थी, वह भविष्य की तरफ़ जाती थी। उसने एक बार बातचीत में कहा भी था कि ' अतीत में अटके लोग अपनी यात्रा बाधित कर लेते हैं, यह प्रकृति के ख़िलाफ़ है। प्रकृति चेतना गति और रूपांतरण का समर्थन करती है। जो इस प्रक्रिया को बाधित करता है, वह अंततः अपना ही नुकसान करता है। अतीत अवसाद का सबसे बड़ा स्त्रोत होता है।'

उसके हाथों को देखकर मेरा यह अनुमान था कि उसके लिए प्यार केवल एक बार की जाने वाली चीज़ थी, इसलिए उसने जिसको भी प्यार किया होगा, वह एक ही बार और वह भी टूटकर किया होगा।

मैंने एक बार उससे पूछा कि– 'क्या प्यार मनुष्य को एक से अधिक बार हो सकता है?'

उसने कहा कि– ‘हाँ, हो सकता है, बशर्ते वह प्यार को पहचानता हो। बहुधा मनुष्य जब एक से अधिक बार प्यार करता या पाता है तो वह प्यार नहीं प्यार से मिलती-जुलती कोई चीज़ होती है।’

‘प्यार को कैसे पहचाना जा सकता है?’ मैंने पूछा।

‘प्यार को पहचानने का कोई एक तयशुदा फ़ॉर्मूला नहीं है, मगर जब प्यार जीवन में दाख़िल होता है तो वह हमें स्थायी तौर पर रूपांतरित करता है और प्यार से मिलती-जुलती किसी चीज़ के रूपांतरण अस्थायी, तात्कालिक और परिस्थितिजन्य अधिक होते हैं।

दरअसल प्यार इतना निजी होता है कि उस पर अधिक बात नहीं की जा सकती है। वह अनुभूति का विषय होता है। जब कोई व्यक्ति वास्तविक प्यार में होता है तब उसका चेहरा देवत्व की पवित्रता से भर जाता है। वह रहता किसी भी लोक में हो मगर उसकी चर्चा देवताओं के ईर्ष्या-सम्वादों में होती है।’

मैं इस बात से संतुष्ट था, इसलिए फिर कोई प्रतिप्रश्न नहीं किया।

बहुत दिनों बाद मैं उसके घर गया।

इस दौरान उसका न फ़ोन/मैसेज आया और न मैंने ही अपनी तरफ़ से किया। मुझे सम्बन्धों में ऐसा अनकहा निर्वात् अच्छा लगता था। यह मन पर आसक्ति की काई नहीं जमने देता है।

मैंने डोरबेल बजाई तो उसने दरवाज़ा खोला। मुझे देख उसे कोई ख़ास ख़ुशी नहीं हुई। हालाँकि यह मेरा एक कोरा अनुमान ही था, क्योंकि जो ख़ुशी चेहरे पर नज़र आती है वह अक़्सर औपचारिक शिष्टाचार की उपज होती है। उसकी आँखों में झाँकने की न हिम्मत हुई और न उसने फ़ुर्सत ही दी। वह गेट खोलते ही अंदर के कमरे में चली गई।

मैं थोड़ी देर ड्राइंग रूम में बैठा टेबल पर रखी 'सेमीनार' मैगज़ीन के पन्ने पलटता रहा, मगर जब काफ़ी देर तक वह नहीं लौटी तो मैं अंदर कमरे में गया। उस घर में मुझे इतनी छूट थी कि मैं बिना नॉक किए आ-जा सकता था।

वह अपने बुक शेल्फ़ में कोई किताब तलाश रही थी। मैंने पूछा कि 'क्या कोई ख़ास किताब गुम हो गई है, जो इतनी फ़िक्रमंद होकर किताब तलाश रही हो।' उसने मेरी तरफ़ बिना देखे कहा– 'यहाँ तो मनपसन्द आदमी गुम हो जाते हैं, किताब कौन-सी बड़ी चीज़ है।' मुझे पहली बार उसकी बात में नाराज़गी की ख़ुशबू आई। हालाँकि मैंने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। मैंने थोड़ा दार्शनिक भाव से इतना ज़रूर कहा– 'खोना-पाना चलता रहता है।'

थोड़ी देर बाद उसने एक किताब में बुकमार्क लगाया और किताब को फिर से शेल्फ़ में रख दिया।

'मैं शायद आज ग़लत समय पर आ गया हूँ।' मैंने खिन्न होने का औपचारिक अभिनय करते हुए कहा।

'हाँ! तुम यक़ीनन ग़लत समय पर आए हो, मगर तुम एक ग़लत वक़्त को अपने होने भर से सही करने का सामर्थ्य रखते हो, इसलिए इस बात से मुझे कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ा है।' उसने मुस्कुराते हुए जवाब दिया।

'अब मैं आ गया हूँ तो सही समय शुरू होता है, आपका ऐसा मानना है।' मैंने हँसते हुए कहा।

'नहीं। मेरा ऐसा मानना नहीं है, मगर तुम्हारे आने भर से वक़्त अच्छे या बुरे होने की संज्ञा से मुक्त हो गया है।' मुझे ऐसा लगता है।

'क्या आप मुझसे कुछ नाराज़ हैं?' मैंने पूछा।

'बेवक़ूफ़ों वाले सवाल मत करो। मैं ख़ुद के अलावा किसी से नाराज़ नहीं होती हूँ।' उसने शुष्कता से जवाब दिया।

'अच्छा एक बात बताओ। कोई मनुष्य दूसरे मनुष्य की प्रतीक्षा क्यों और कब करता है?' उसने पूछा।

मेरे पास सवाल का कोई जवाब नहीं था, इसलिए मैं सीधा उसके गले लग गया और उसके कान में बुदबुदाया– 'क्यों और कब का नहीं पता मुझे, मगर प्रतीक्षा के औचित्य पर इससे बेहतर कोई जवाब मेरे पास नहीं है।'

उसके बाद हमारी कोई बात नहीं हुई और मैं तेज़ी से उसके घर से निकल आया। उसने बाद में क्या सोचा होगा, मैंने बाद में यह सोचा भी नहीं।

‘माया’ एक सभ्यतागत शब्द है, शब्द से अधिक एक भाव है, मगर असल में उसके लिए पारिभाषिक शब्द उपनिषद् के किसी मन्त्र से चुनना चाहिए था। मेरी बातों की ध्वनि गल्प की थी, मगर वह एक विचित्र रूमानियत से भरा यथार्थ था, जिस पर मैं एक साथ दौड़ रहा था, तैर रहा था या यूँ कहूँ कि फिसल रहा रहा था।

उसकी हँसी में झरने के जल का बोझ था। उसकी आँखों में एक गहरी घाटी के ऊपर अकेले मंडराते पक्षी का धैर्य था। वह अपने वृत्त में इतनी अकेली थी कि मैं बाहर से उसकी गति का अनुमान नहीं लगा पाता था। उसके माथे पर निर्जनता पसरी थी, मगर वहाँ कुछ रास्ते ऐसे भी थे, जिन्हें पढ़ने के लिए लोबान की तरह धड़कनों की धूप दिखानी पड़ती थी।

उसकी आँखों का काजल इतना महीन था कि उसे देख कम-से-कम सही और ग़लत में भेद करने की आदत का मेरा स्थायी निदान हो गया था। उसकी आँखों में न कोई आमन्त्रण था और न कोई प्रतीक्षा थी, वे शून्य के विस्मय से सरोबार थीं। उनमें एकटक देखना इसलिए भी संभव नहीं था, क्योंकि पलक झपकते ही भूत, वर्तमान, भविष्य समानांतर ढंग से युग परिवर्तन भी कर लेते थे।

उसके हाथ अपने हाथों में लेते वक़्त मैंने महसूस किया जैसे कोई जंगली वनस्पति अपना एकांत छोड़कर दुर्लभ औषधि की शक्ल में आहत हृदय का उपचार करने चली आई हो। उसकी उँगलियों को देखकर मैं एक स्वतंत्र आकृति विज्ञान रच

सकता था। उसकी हस्तरेखाओं की दुनिया एक विचित्र एकांत से भरी थी। कोई रेखा न दूसरी को काटती थी और न किसी दूसरी रेखा को विस्तार देती थी।

वह पीठ पर उगी आँखों को पढ़ने का हुनर जानती थी, इसलिए उसके पास जिज्ञासा या कौतूहल सवाल की शक्ल में बेहद न्यूनतम अवस्था में उपस्थित रहता था। मनुष्य की विवशताओं को आदर से देखने का कौशल मैं उसी के साथ सीख पाया।

उसकी बातों में पुनरुक्ति दोष नहीं था। उसका हर कथन इतना पूर्णतावादी था कि उस पर पुनर्समीक्षा की कभी आवश्यकता महसूस नहीं हुई। प्रेम को देह से इतर और प्रेम को देह के भीतर, मैंने उसके माध्यम से देखा। वह न देह से मुक्त थी और न वह देह में लिप्त थी। प्रेम का उसका था बेहद वैयक्तिक संस्करण। इसलिए उसके प्रेम को समझने के लिए मुझे न लोक के उद्धरण की आवश्यकता थी और न अपने सेल्फ़ को बेवजह प्रश्नबोधी बनाने की।

उसको समझने के लिए कोशिश नहीं करनी पड़ती थी, वह सम्प्रेषण में सिद्ध थी, इसलिए उसको देखकर कभी कोई एक राय क़ायम करने का मन नहीं होता था। उसे बिखराव पसंद था। वह अस्त-व्यस्त रहती मगर उसकी दशा और दिशा हमेशा समेकित नज़र आती थी।

वह मायावी थी, इतनी मायावी कि उसका मायावीपन देवत्व की सीमाओं को अपने भीतर समेट लेता था। अपनी अनुपस्थिति में वह उपस्थिति से अधिक मौजूद रहती थी, न ख़त्म होने वाली बातों की शक्ल में।

मैंने कभी उससे उसका नाम नहीं पूछा।

क्यों नहीं पूछा? इसका कोई सही जवाब मेरे पास आज तक नहीं है।

शायद हमारे मध्य नाम और सम्बोधन की कोई उपयोगिता ही नहीं थी। उसे मेरा नाम पता था, मगर एकाध प्रसंग छोड़ दिया जाए तो मुझे याद नहीं आता कि उसने मुझे कभी मेरे नाम से बुलाया हो।

तब नहीं लगती थी, मगर अब यह बात सोचने में थोड़ी हैरत करने वाली लगती है कि मुझे उसका नाम नहीं पता था। भले ही मुझे उसका नाम नहीं पता था, मगर मैं उसे उन लोगों से अधिक गहराई से जानता था, जिन्हें उसका नाम पता होगा। उससे मिलने के बाद से मेरे जीवन में लम्बे समय तक 'नाम' जैसी अवधारणा अप्रासंगिक हो गई थी।

कल्पनाएँ प्रायः नामविहीन होती हैं। अमूमन कल्पनाएँ कामनाओं का एक दिगम्बर संस्करण होती हैं। मगर वह सघनता से बुना हुआ एक यथार्थ थी, जिसके इर्द-गिर्द मेरी दुनिया सिमट आयी थी। ऐसा भी नहीं था कि मैं उसके सम्मोहन या किसी मोहपाश में था, मगर यह सच बात है कि उसके रहते हुए मैंने जीवन को अपनी देह से बाहर निकल कर देखना शुरू किया था।

मैं ख़ुद को अजनबी स्पर्श के साथ छू सकता था। मैं रास्ता जानते हुए ख़ुद को भटकते हुए देख सकता था। पहली बार मैं एक अनिश्चित साथ के बावजूद अपने

जन्म-जन्मान्तर के कर्मों का लेखा-जोखा समझने के लिए नास्तिक से धुर आस्तिक हो सकता था। उसके साथ मुझे जो विस्तार मिला उसके ज़रिए मैं आत्मदोष की ग्रंथि से मुक्त हो गया था। अन्यथा मैं हर बार ख़ुद को ही ग़लत पाता था।

मैंने उसे 'मायावी' बाद में अपनी सुविधा के लिए कहा। हालाँकि यह शब्द कभी मुझे संतुष्ट नहीं कर पाया, मगर दरअसल मैं अंदर से इतना भर गया था कि यदि मैं अपने अनुभव का दस्तावेज़ीकरण नहीं करता तो मैं चेतना के स्तर पर फट पड़ता, इसलिए जल्दबाज़ी में मैं मायावी की बातें अपने बेतरतीब ढंग से कहने लगा था।

मैंने एक बार उससे अनुमति लेने की नहीं, अपितु जानकारी देने की मंशा से कहा कि 'मैं आपकी बातों को लिखना चाहता हूँ।'

इस पर उसने हँसते हुए कहा– 'बातें कहाँ कभी पूरी लिखी जाती हैं? और जितनी लिखी जाती हैं वह भी एक समय के बाद अपने अधूरेपन की ऊब का शिकार हो जाती हैं। फिर भी यदि तुम्हें ख़ुद पर इतना भरोसा हो कि तुम हमारी बातों को ठीक वैसा लिख सकते हो जैसी वे कही गई हैं तो मैं कहूँगी कि निःसंदेह तुम पर कोई देवकृपा है।'

'क्या आप देवकृपा जैसी बात मानती हैं?' मैंने जिज्ञासा से पूछा।

'मेरे देवता आसमान में रहने वाले संख्या में अनगिनत देवता नहीं हैं, वे क्या किसी पर कृपा करेंगे, वे तो ख़ुद किसी की कृपा से उत्पन्न हुए हैं।' उसने मुस्कुराते हुए कहा।

'तो फिर आपके हिसाब से कौन है देव?'

'तुम कई बार एक बात का सिरा पकड़ लेते हो। आदत उतनी बुरी भी नहीं है, मगर कोई ख़ास अच्छी भी नहीं है।' उसने थोड़ा अनमना होकर जवाब दिया।

‘मैंने देवकृपा तुम्हारी आत्मा के सौन्दर्य के लिए महज़ एक प्रतीक के तौर पर प्रयोग किया था। एक पवित्र सेल्फ़ के बिना, निष्कर्ष रहित बातचीत को संकलित करना निःसंदेह एक दुर्लभ गुण होता है। चूँकि तुम कोई बात प्रभावोत्पादन के लिए नहीं बोलते हो, इसलिए मैंने तुम्हारे मंतव्य की अपने शब्दों में प्रशंसा की है। देव और मनुष्यों में उलझना उनके लिए ठीक है, जो मनुष्यता के रेखांकन के लिए नियुक्त हैं। मनुष्य और देवताओं की कृपा में कोई ख़ास अंतर नहीं होता है। दोनों ही मूलतः प्रतिदान के भूखे होते हैं।’

इतना कहकर वह चुप हो गई। फिर मैंने कोई सवाल नहीं किया।

उस दिन मैंने अपनी आत्मा के सौन्दर्य को पहली बार महसूस किया था। उसके बाद मैं कैसा महसूस कर रहा था वह लिख पाऊँ निःसंदेह मुझ पर ऐसी देवकृपा बिल्कुल भी न थी।

हमने जितना वक़्त साथ बिताया। उससे कई गुना अधिक समय हम अलग रहे।

बीच-बीच में ऐसा अंतराल आता कि लगता जैसे ये रिश्ता एकदम मृतप्रायः हो गया हो। रिश्तों में स्पेस के हिमायती तो बहुत से लोग होते हैं, मगर वह रिश्ते के मध्य एक निर्वात् छोड़ जाती थी। उसको याद करते समय मन भावुक नहीं होता था, बल्कि अंतर्मन में एक सहज सुखद मुस्कान पसर जाती थी।

मैं यह तो नहीं कहूँगा कि मेरा उससे कोई रागात्मक रिश्ता नहीं था, मगर उससे मेरा किस क़िस्म का राग था, यह बता पाना मेरे लिए मुश्किल होगा। उसकी बातें यज्ञ की ऋचाओं के जैसी हैं, वे स्मृति का ऐसा हिस्सा बनती हैं कि वे वैसे भले ही याद न रहें मगर कोई संदर्भ मिलते ही होंठ ख़ुद-ब-ख़ुद बुदबुदाने लगते थे।

एक दिन जब तीसरे पहर मैं उसके घर पहुँचा तो वह अपने बगीचे में पौधों को पानी दे रही थी। उस बगीचे के पास एक छोटा-सा लॉन था जहाँ दो पत्थर रखे थे। उन्हें कुर्सी की तरह यूज़ किया जाता था। जितनी बार भी मैं उससे मिला, उसने एक भी बार मेरे आने का कारण नहीं पूछा, जैसे कि मेरे आने से पहले उसे पता होता था कि मैं क्यों मिलने आया हूँ।

मैंने पूछा– 'आपको कौन सा फूल सबसे अधिक पसंद है?'

उसने कहा– 'फूलों में चुनाव वे लोग करते हैं जिन्हें ख़ूबसूरत चीज़ों का आदर करना नहीं आता है। मुझे डाली पर लगा हुआ हर फूल पसंद है।'

‘तो क्या निजी पसंद-नापसंद का कोई अर्थ नहीं होता?’ मैंने पूछा।

‘निजी क्या है, यह समझने में उम्र बीत जाती है। अक़्सर लोग, जो धारणाएँ आस-पास सहज उपलब्ध हैं, उन्हें देखकर अपनी राय बनाते हैं। मसलन किसी को ग़ुलाब का फूल पसंद है तो उससे पूछा जाना चाहिए कि गंध, रंग, आकृति के कारण पसंद है या और भी कोई अन्य कारण है पसंद करने का? मेरे ख़याल से यह अन्य कारण सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, मगर कोई इसे तलाश करने का कष्ट नहीं उठाता है।’ उसने मुस्कुराते हुए जवाब दिया।

‘अगर मैं तुमसे पूछूँ कि क्या मैं तुम्हें पसंद हूँ तो निश्चित रूप से तुम यही कहोगे कि हाँ पसंद हूँ। चूँकि तुम बुद्धिमान हो इसलिए तुम पसंद आने के बहुत से कारण भी बता सकते हो। पर अगर मैं तुमसे यह पूछूँ कि तुम्हें मैं जिन ज्ञात कारणों से पसंद हूँ, क्या उनसे इतर भी कोई कारण है, जिसके कारण मैं तुम्हें पसंद हूँ तो शायद तुम तुरंत वह कारण नहीं बता सकोगे।’

‘उस कारण के होने और तुम्हारे सोचने के मध्य जितना समय है उतने ही समय में मैं तुम्हें वास्तविक रूप से पसंद हूँ और यह पसंद हमेशा बनी रहेगी मगर उस अंतराल में उलझे हुए शब्दों को चुनकर एक वाक्य बनाना आसान नहीं होगा।’

उसने एक पौधे के तने को पकड़कर कहा– ‘क्या तुम इसे छू कर बता सकते हो कि यह अपनी जड़ से कितना प्रेम करता है?’

मैंने कहा– ‘हाँ बता सकता हूँ, मगर शायद आपको छू कर बता पाना मुश्किल होगा कि मैं आपसे कितना प्रेम करता हूँ?’

‘बिल्कुल मैं यही कहना चाह रही थी कि हमारी पसंद का लौकिक संस्करण बहुत आसानी से कहा जा सकता है, मगर हमारी पसंद का एक संस्करण ऐसा भी होता है जो महसूसने में बेहद आसान होता है और कहने में बेहद मुश्किल। इसलिए मुझे दुनिया भर के सब फूल पसंद हैं, इवन ‘इमोशनल फूल’ भी।’ यह कहते हुए वह ज़ोर से हँस पड़ी।

मैंने उसे बहुत कम बीमार देखा था।

अमूमन वह बीमारी और दुःख, दोनों को निजी विषय मानती थी, इसलिए कभी पहल करके उन पर बात करते हुए उसे नहीं देखा। मैंने एक बार थोड़ा केयरिंग होते हुए उससे कहा कि– 'दुःख और पीड़ाएँ शेयर करने से कम हो जाती हैं।'

'पता नहीं किन लोगों की कम हो जाती हैं। दुनिया में तो दुःखों का अम्बार लगा हुआ है। मेरा यह मानना है कि दुःख और पीड़ाएँ शेयर करने से अपनी गरिमा खो बैठती हैं। उसके बाद वह चर्चा और सहानुभूति/समानुभूति आदि की प्रक्रियाओं में खो जाती हैं।' उसने प्रतिवाद करते हुए कहा।

'मुझे आज आप शक्ल से थोड़ी बीमार लग रही हैं। क्या कल रात ठीक से सोई नहीं आप?' मैंने पूछा।

'शक्ल से जो बीमारी दिख जाए उसके बारे में बात करने में मेरी दिलचस्पी नहीं है। जहाँ तक रात में न सो पाने का सवाल है, मेरे ख़याल से कुछ रातें सोने के लिए तो कुछ रातें रोने के लिए मुफ़ीद होती है, और इन दोनों रातों में कोई एक हम नहीं चुनते हैं, बल्कि ये रातें हमें चुनती हैं कि आज हमारे साथ किस तरह से पेश आया जाए।' यह कहने के बाद उसने एक लम्बी आह भरी और बाहर चली गई।

मैं थोड़ी देर कमरे में अनमना बैठा रहा। मैं बाहर निकलने ही वाला था कि वह वापिस अंदर आई और बोली– 'जीवन में हमेशा सहानुभूतियों और विडम्बनाओं

पर बात करते रहोगे तो ख़ुद से मिलने को तरस जाओगे। मनुष्य के अपने दुःख और अपने सुख दोनों ही बहुत सतही होते हैं और हो सकता है जो मेरे लिए सुख हो वह तुम्हारे लिए दुःख हो, होने को तो इसके ठीक उलट भी हो सकता है। इसलिए बीमार से बीमारी और उपचार की तब तक कोई बात न करो जब तक वह तुम्हारे सामने ऐसी बातें करने की स्थितियों का निर्माण न कर दें।'

'क्या हम मौसम पर बात कर सकते हैं? आज सुबह से बारिश हो रही है, अभी थमी है।' मैंने विषय बदलते हुए कहा।

'क्या तुम्हें बारिश पसंद है?' उसने पूछा।

'हाँ! मगर मुझे लगातार होने वाली बारिश पसंद नहीं है। मैं चाहता हूँ बारिश जमकर बरसे और बरसकर एकदम से थम जाए।' मैंने थोड़ा दार्शनिक होकर यह जवाब दिया।

'निरंतरता से ऊब मनुष्य का स्वाभाविक गुण है, मगर अंतराल के सौन्दर्य को समझने के लिए एक धड़कता हुआ दिल मनुष्य के पास होना चाहिए।' उसने हँसते हुए कहा।

'मेरे पास ऐसा दिल है, इसलिए मैं अंतराल में बसे सौन्दर्य को महसूस कर सकता हूँ और न केवल महसूस कर सकता हूँ, बल्कि उसको समझा भी सकता हूँ।' मैंने जवाब दिया।

'मैं इस दिल की धड़कन एक बार सुनना चाहती हूँ। क्या तुम मुझे ऐसा करने की इजाज़त दोगे?' उसने पूछा।

'क्यों नहीं, इसमें इजाज़त की क्या ज़रूरत है।' मैंने यह कहते हुए अपने हाथ फैला दिए।

उसने उस दिन कुछ इस तरह से मेरे हृदय से अपने कान लगाए कि आज तक मेरे दिल पर उसके छोटे टॉप्स वाले कान का नक़्शा छपा हुआ है। मेरी धड़कनें अब उसी कान से होकर मुझ तक आती हैं।

बस एक ख़राब या अच्छी बात यह हुई कि उसके बाद मैंने अपने दुःखों पर बातें करना बंद कर दिया। मैं उसके उपचार के ज़रिए ख़ुद की बीमारी का उपचार पा गया था उस दिन।

एक दिन अचानक से उसका फ़ोन आया। अचानक इसलिए क्योंकि वह प्रायः फ़ोन नहीं करती थी। कोई बात कहनी होती तो वह टेक्स्ट भेजती थी।

उसने पूछा– 'कहाँ हो?' मैंने कहा– 'बार में हूँ, शराब पी रहा हूँ।'

'ठीक है! जब ख़त्म कर लो तब फ़ोन करना।'

उस दिन बार में एक लड़का अपने गिटार के साथ गाने सुना रहा था। मैं उसको देर तक सुनता रहा और ड्रिंक रिपीट होते रहे। वह किशोर कुमार के रोमांटिक सांग्स गा रहा था, मैंने उससे रिक्वेस्ट करके एक दो अपनी पसंद के गाने भी सुने।

लौटते वक़्त मैंने उसको फ़ोन किया।

उसने पूछा– 'अकेले बार में बैठकर कैसा लगता है? मेरे ख़याल से अकेले में शराब वही पीता है जो ख़ुद से ख़ुद की रिहाई चाहता हो।'

मैं थोड़े नशे में था इसलिए मैंने अंग्रेज़ी में इसका जवाब दिया– 'इट्स बेटर टू बी अलोन दैन इन बेड कम्पनी।'

'अच्छे लोगों की सोहबत भी आदमी को बुरा बना सकती है।' उसने हँसते हुए कहा।

मैंने कहा– 'अच्छा या बुरा होना एक तात्कालिक गुण है। न कोई स्थायी तौर पर

अच्छा होता है और न कोई स्थायी तौर पर बुरा। इसलिए हम जैसे बनते हैं, उसकी वजहें भी हमारी अपनी होती हैं।'

'अच्छा सुनो! क्या तुम अभी घर आ सकते हो?' उसने पूछा।

हालाँकि मैं इस हालत में उसके घर जाना अवॉइड करना चाहता था, मगर पता नहीं क्यों मैं मना नहीं कर पाया।

मैंने कहा– 'ठीक है, दस मिनट में पहुँच रहा हूँ।'

उस दिन घर का दरवाज़ा खुला हुआ था, इसलिए घंटी बजाने की ज़रूरत नहीं पड़ी।

वह अपने ड्राइंग रूम में आराम कुर्सी पर बैठी कुछ पढ़ रही थी।

मुझे देखकर उसने किताब में बुकमार्क लगाया और उसे टेबल पर रख दिया।

'अच्छा, आज फ़ोन कैसे कर लिया आपने।' मैंने पूछा।

'फ़ोन इसलिए किया था क्योंकि मुझे आज शाम लगा था कि तुम्हें एक बढ़िया कम्पनी की ज़रूरत है।' उसने मुस्कुराते हुए कहा।

'ऑफ़कोर्स मुझे थी, मगर वह कम्पनी बार में मिल गई।' मैंने हँसते हुए कहा।

'क्या तुम शराब की कम्पनी को बेहतर मानते हो?' उसने सवाल किया।

'नहीं, मैं उस कंपनी को बेहतर मानता हूँ जिसमें ख़ुद से एक गहरी मुलाक़ात होती हो।' मैंने जवाब दिया।

'अच्छा एक बात बताओ, आदमी शराब क्यों पीता है?' उसने पूछा।

'मैंने कभी इस तरह सोचा नहीं। शायद मुझे अपने जीवन के कुछ 'क्यों' अनुत्तरित

रखने की आदत है। मुझसे यदि आप यह पूछें कि मैं आपसे क्यों मिलता हूँ तो मेरे पास इसका भी ठीक-ठीक जवाब नहीं होगा।'

'आज तुम एकदम सधे हुए जवाब दे रहे, क्या शराब पीकर अतिरिक्त रूप से सावधान हो जाते हो तुम?' उसने हँसते हुए पूछा।

'शराब पीकर मैं सावधान हो जाता हूँ, इसका तो नहीं पता, मगर हाँ मैं थोड़ा भावुक ज़रूर हो जाता हूँ।' मैंने कहा।

'मगर आज तुम भावुक नज़र नहीं आ रहे हो।' उसने यह बात मेरी आँखों में आँखें डालकर कही।

उसके बाद न जाने क्यों मेरे आँसू छलक पड़े, जबकि इससे पहले ख़ालिस वैचारिक बातें हो रही थीं।

थोड़ी देर हम दोनों चुप बैठे रहे। उसके बाद उसने कहा– 'मैंने अपना और तुम्हारा खाना बाहर से ऑर्डर करके मँगवा लिया था। आज खाना यहीं खाना।'

'आपको कैसे पता था कि मैं आ ही जाऊँगा?' मैंने पूछा।

'मुझे तो यह भी पता है तुमने आज कौन-सी ब्रांड की शराब पी है। अब कैसे पता है ये मत पूछना।'

उसने मेरा हाथ पकड़ा और कहा– 'चलो डिनर करते हैं। ख़ुद को बातों में भी क्या ज़्यादा खर्च करना।'

मैं चाहती हूँ हम कुछ दिनों के लिए यह मेल-मिलाप बंद कर दें। उसने अचानक से एक दिन यह बात कही।

बिना किसी सन्दर्भ के मुझे यह सुनना कतई अच्छा नहीं लगा इसलिए मैंने पूछा– 'क्या मैं इसकी वजह जान सकता हूँ?'

'बिल्कुल जान सकते हो, बल्कि तुम्हें ज़रूर जाननी चाहिए।' उसने आत्म-विश्वास से जवाब दिया।

'दरअसल जैसे हमारे मेल-मिलाप की कोई ज्ञात वजह नहीं है ठीक वैसे ही मेरे यह सोचने की कोई ज्ञात वजह नहीं है। शायद मैं तुम्हारी कम्पनी से ऊब गई हूँ।' उसने गम्भीरता से यह बात कही।

'मुझे लगता है, ऊब वहाँ पर उत्पन्न होती है जहाँ किसी क़िस्म की कोई अपेक्षा हो? क्या मैं आपकी किसी अपेक्षा पर ख़ारिज हो गया हूँ?' मैंने थोड़ा नाराज़ होने का अभिनय करते हुए कहा।

'मुझे तुमसे कभी कोई अपेक्षा नहीं रही और न ही यह ऊब किसी अपेक्षा के टूटने से उपजी। यह पूरी तरह से ऊब है, यह भी मैं नहीं कह सकती हूँ, इसलिए मैंने अपने कथन में ऊब से पहले 'शायद' शब्द का प्रयोग किया है।' उसने जवाब दिया।

'मगर मैं अभी इस मेल-मिलाप के आकस्मिक विराम को लेकर मानसिक रूप से तैयार नहीं हूँ। भले ही आप मुझसे साल भर न मिलतीं, मुझे लेशमात्र भी मलाल न

होता बशर्ते आप इस न मिलने की उद्घोषणा न करती।' मैं इतना कहकर चुप हो गया।

थोड़ी देर हम दोनों चुप बैठे रहे। फिर उसने कहा– 'मैं तुम्हारे जीवन से विदा नहीं हो रही हूँ। मैं बस कुछ समय के लिए स्थगित हो रही हूँ। किसी के जीवन से विदा होना या किसी के जीवन से विदा पा जाना कभी संभव भी नहीं होता है। हम अंशों में कहीं न कहीं छूटते रहते हैं या बच जाते हैं।'

'अच्छा! जब ये मेल-मिलाप बंद हो जाएगा तब आप क्या करोगी?' मैंने शिकायती लहजे में पूछा।

'पता नहीं अभी तो। मगर कभी-कभी तुम्हें याद ज़रूर किया करूँगी। किसी को याद करना उसके अस्तित्व को प्रेमिल होकर निहारने का सबसे अच्छा अवसर होता है। हम जब किसी की अनुपस्थिति में उसको याद करते हैं, तब मन की तलछट पर कुछ अनकही बातें बैठ जाती हैं। उनको सम्मोहन या विस्मय से देखना एक अजीब-सा सुख देता है। मैं यही सुख महसूस करूँगी।'

'आपको अचानक से यह नहीं कहना चाहिए था। मुझे इस निर्णय की एक भूमिका की अपेक्षा थी। कम-से-कम मैं मानसिक रूप से इस बात के लिए तैयार रहता।' मैंने कहा।

'जिस विदा की भूमिका धीरे-धीरे लिखी जाती है, वह एकांत में हमें बहुत रुलाती है। प्रायः हम आत्मदोष देकर ख़ुद को संभालते हैं। मैं नहीं चाहती थी कि जब मैं तुम्हारे इर्द-गिर्द उपस्थित न रहूँ तो तुम मुझे सोचकर भावुक या द्रवित हो जाओ। मैं चाहती हूँ तुम मुझे कुछ इस तरह से करना याद, जैसे बसंत जब लौट जाता है आसमान की तरफ़, वह धरती की तरफ़ मुड़-मुड़कर देखता है और कोयल की कूक को करता है याद। वह जिस तरह से उस हवा को करता है याद जो दक्खिनी थी, मगर एक घाटी में उतरते हुए बन गई थी पुरवाई। तुम भी मुझे ठीक इसी तरह करना याद।'

‘मैं ज़्यादा शर्तें लगाऊँगी तो फिर यह स्थगन काल अपनी नैसर्गिकता खो देगा, इसलिए मैं चाहती हूँ कि तुम भी इसे इसके मूल और नैसर्गिक स्वरूप में इसे महसूस करो।’

मैंने इसके बाद बस इतना पूछा– ‘क्या हम आज के बाद कभी नहीं मिलेंगे?’

‘फ़िलहाल मिलने को लेकर मेरे पास कोई स्पष्ट मानचित्र नहीं है, क्योंकि मैं अभी अपने एकांत के छूटे हुए रेखाचित्रों की मदद से अपने स्व निर्वासन की भूमिका लिखने में व्यस्त हूँ।

हाँ! इतना ज़रूर है कि अभी हमारे साथ का एक अध्याय पूर्ण होता है।’

‘क्या मैं एक बार आपके गले लग सकता हूँ?’ मैंने एक औपचारिक आज्ञा माँगी।

‘क्यों नहीं!’ उसने कहकर हाथ फैला दिए।

मैं जब उसके गले लगा तो मन ही मन यह प्रार्थना कर रहा था कि कम-से-कम यह मिलाप आख़िरी न हो!

जब मैं जाने लगा, उसने पीछे से कहा– ‘यक़ीन रखो, यह आख़िरी नहीं होगा।’

लगभग छह महीने हमारी बातचीत बंद रही।

लगभग मैंने इसलिए लिखा, क्योंकि उसने विदाई का समय अपनी सुविधा से आकस्मिक रूप से तय कर दिया था। इसलिए हमारीअंतिम मुलाक़ात के बाद मैंने समय का हिसाब रखना बंद कर दिया था। इस दौरान हमारा किसी क़िस्म का कोई सम्वाद नहीं हुआ और यहाँ तक कि मुझे उसका कोई सपना तक नहीं आया, जबकि मेरे जीवन के कुछ बेहद जीवन्त पल उसके साथ जुड़े हुए थे। जब उसकी सपनों तक में दस्तक निर्वासित हो गई, उस समय मैंने इतना ज़रूर जाना कि वह मेरे जीवन में किसी भी क़िस्म की वर्जित कामना की शक्ल में उपस्थित नहीं थी, और न ही उसको लेकर मेरे मन में किसी क़िस्म का कोई द्वंद्व था। वह पानी की तरह तरल और साफ़ थी जो अपने वेग से आगे बढ़ गई थी।

एक दिन मैं किसी किताब का वह पेज भूल गया जहाँ मैंने उसको पढ़ना बंद किया था। अनमने भाव से उसके पन्ने पलट रहा था तभी अचानक उसका एसएमएस मिला जिसमें लिखा था ‘आज शाम कहीं साथ कॉफ़ी पीते हैं, जगह मैं तय करती हूँ, समय तुम तय करो।’

एसएमएस पढ़कर मैंने किताब में खोया हुआ पेज तलाशना बंद कर दिया। सच कहूँ तो मैं ग़ुस्से और ख़ुशी दोनों क़िस्म के मिश्रित भाव से भर गया था। एक बार लगा कि कोई जवाब न दूँ, फिर मुझे इस प्रस्ताव की अवज्ञा की कोई वाजिब वजह

न मिली और मैंने लिख दिया कि 'समय भी अपने हिसाब से तय कर लो। फ़िलहाल मेरे पास समय का कोई अभाव नहीं है।'

'समय का अभाव न होना और एक नियत समय तय करना दो अलग बातें होती हैं। मेरे ख़याल से उपलब्धता समय का अनादर नहीं, बल्कि समय का परितोष होता है। तुम्हें एक नियत समय बताना चाहिए था। ख़ैर ! शाम छह बजे सर्किट हाउस के चौराहे पर मिलते हैं।' उसका जवाबी एसएमएस मुझे मिला।

मैंने सिर्फ़ 'ओके' लिखा और मैसेज डिलीवर होने की प्रतीक्षा की।

आदतन मैं नियत समय से पहले सर्किट हाउस चौराहे पर पहुँच गया। ऐसा नहीं था कि इस मुलाक़ात को लेकर मेरे मन कोई अतिरिक्त उत्साह था, मैं उसके आने की दिशा देखना चाहता था।

दरअसल उसके आने की कोई ज्ञात दिशा नहीं थी, इसलिए मैं जिस तरफ देख रहा था वह उस तरफ़ से तो बिल्कुल नहीं आयी। उसने पीछे से मुझे आवाज़ दी। मैं जैसे ही पलटा तो उसे ख़ुद के सामने पाया। उसके बाद मैं दिशा भ्रम का शिकार हो गया।

'कॉफ़ी कैसी लगी?' उसने पूछा।

'मुझे कॉफ़ी कोई ख़ास पसंद नहीं है। बेहतर होता कि आप मेरे लिए या तो चाय का विकल्प रखतीं या फिर शराब का।' मैंने मुस्कुराते हुए जवाब दिया।

'कई बार मुझे तुम्हारी पसंद का अतिक्रमण करना अच्छा लगता है, इसलिए दोनों ही विकल्प नहीं दिए। फ़िलहाल अपनी नापसन्द को मेरा कौतूहल समझ कर पी लो।' उसने हँसते हुए कहा।

‘वैसे अगर तुम अपनी पसंद का ज़िक्र करते तो शायद मैं एक बार विचार भी करती।’ उसने कॉफ़ी की घूँट भरते हुए और मेरी आँखों में झांकते हुए कहा।

‘मुझे लगता है कि पसंद का ज़िक्र करना व्यर्थ का प्रयोजन है। यदि आपकी पसंद सामने वाले को स्वतः संप्रेषित नहीं होती है तो फिर हो सकता है कि आपकी पसंद अभी आधी-अधूरी हो!’ मैंने कहा।

‘यह एक अच्छी बात कही तुमने।’ उसने गम्भीरता से कहा।

इसके बाद हम प्रायः चुप रहे और अपनी-अपनी कॉफ़ी ख़त्म की। मुझे लगा कि आज की इस मुलाक़ात में मेरी उपयोगिता एक साथी-भर की थी। उसने आज अधिक बात नहीं की।

हाँ! जाते समय उसने इतना ज़रूर कहा कि ‘आज के बदले तुम भी एक बार मेरी पसंद का अतिक्रमण कर सकते हो।’

मैं मन ही मन अगली मुलाक़ात के दौरान चाय और शराब के चयन में उलझा रहा। फिर बाद में ऐसा लगा कि शायद मैं अभी उस अवस्था को प्राप्त नहीं हुआ हूँ कि किसी की पसंद का साधिकार अतिक्रमण कर सकूँ। इसलिए उसके प्रस्ताव ने मुझे अधिक उत्साहित नहीं किया।

उस दिन की मुलाक़ात का मुझ पर इतना असर ज़रूर हुआ कि मैंने उस रात पहले चाय पी, फिर थोड़ी शराब पी और सोने से पहले फिर से चाय पी।

ये आज तक नहीं पता कि मैं ख़ुद के अन्दर किस पसंद का अतिक्रमण करके ख़ुश हो रहा था उस रात।

‘क्या तुम्हें कभी ऐसा लगा कि हमारी मुलाक़ातों का दस्तावेज़ीकरण करना चाहिए?’ उसने पूछा।

‘मेरे ख़याल से मुलाक़ातों का दस्तावेज़ीकरण मुलाक़ातों के पुनर्मूल्यांकन की माँग करता है, इसलिए यह नहीं होना चाहिए।’ मैंने स्पष्टता से जवाब दिया।

‘मनुष्य क्या स्मृतियों के पुनर्मूल्यांकन से डरता है?’ उसने फिर पूछा।

‘मनुष्य स्मृतियों के पुनर्मूल्यांकन से नहीं, बल्कि स्मृतियों में औचित्य तलाशने से बचता है। प्रायः स्मृतियाँ आवारा रहना चाहती है। हमें उनके नामकरण से डर लगता है। यदि हम स्मृतियों का औचित्य समझने, नामकरण या सम्पादन करने की कोशिश करते हैं, इसमें अनिवार्य रूप से मूल्यांकन की प्रक्रिया शामिल हो जाती है। इसके बाद स्मृतियों के आकाश से मन गुमशुदा हो जाता है और बुद्धि उचित-अनुचित का गणित लगाने लगती है, इसलिए मनुष्य स्मृतियों के पुनर्मूल्यांकन से डरता नहीं बस सायास बचता है।’ मैंने एक साँस में अपनी बात पूरी करते हुए कहा।

‘अच्छा यह बताओ तुम्हें जो व्यक्ति प्रिय है, वह किस लिए प्रिय है?’ उसने पूछा।

‘मुझे कोई व्यक्ति इसलिए प्रिय है क्योंकि मुझे उसके प्रिय होने की वजहों को व्यवस्थित रखने की कभी आवश्यकता महसूस नहीं होती है।’ मैंने हँसते हुए कहा।

‘अगर मैं इसे टेकन फॉर ग्रांटेड समझूँ?’ उसने पूछा।

‘मेरे ख़याल से उम्र के एक ख़ास दौर के बाद यह सभी रिश्तों की नियति बन जाती है, मगर मैं इसे टेकन फ़ॉर ग्रांटेड नहीं कहता। यह एक क़िस्म की बेपरवाही है, जिसकी जड़ में एक गहरी मनोवैज्ञानिक आश्वस्ति बसी होती है।’ मैंने जवाब दिया।

‘वैचारिक बातें थोड़ी शुष्क क़िस्म की होती हैं न!’ उसने थोड़ा उदास होकर कहा।

‘ये आप कह रही हैं? मैंने आश्चर्य व्यक्त करने हुए कहा।

‘हाँ! दरअसल अब मैं वैचारिक संवाद से ऊब गई हूँ। मैं अब फूलों की कोमलता पर बात करना चाहती हूँ। मैं धरती के सबसे उपेक्षित कोनों पर उग आई जंगली लताओं की लम्बाई अपनी हथेली की बिलांद से नापना चाहती हूँ। मैं अब चाहती हूँ कि किसी पहाड़ी रास्ते के अंतिम छोर का कान पकड़ कर, उसे वहाँ ले जाऊँ, जहाँ से वह रास्ता शुरू होता है। मैं अब ठोकरों के कारण अपने कुनबे से बिछड़ गए छोटे-छोटे पत्थरों और कंकरों का एक अलग गाँव बसाना चाहती हूँ जहाँ वह अपनी सामूहिक पीड़ा के साथ शान्ति से रह सकें।’

‘क्या मैं थोड़ी देर तुमसे अपनी चाहतों पर बात कर सकती हूँ?’ उसने संकोच के साथ पूछा।

‘हाँ! क्यों नहीं? मैं चाहतों का बड़ा रसिक श्रोता हूँ।’ मैंने मुस्कुराते हुए कहा।

‘भले ही तुम्हें मेरी चाहतों के विज्ञापन में कोई रस नज़र न आए, मगर मैं अपनी चाहतों पर फ़िलहाल केवल तुमसे बात कर चाहती हूँ। मुझे उम्मीद है कि तुम केवल इसे सुनोगे और सुनकर कोई सुझाव न दोगे।’

‘क्या यह एक शर्त है?’ मैंने कहा।

उसने कहा– ‘शर्त नहीं, ये मेरा शिष्टाचार का एक निजी मानक है।’

‘मैं कुछ दिन के लिए बाहर जा रही हूँ। क्या तुम कुछ दिन मेरे यहाँ रुक सकते हो?’ उसका मैसेज मिला, एक दिन।

तुरन्त मुझे इसका कोई जवाब न सूझा, इसलिए इतना भर लिख भेजा कि ‘मिलने पर बता सकूँगा। आज शाम आऊँगा आपसे मिलने।’

उसने ‘ओके’ लिखकर एक फुलस्टॉप लगा दिया।

‘जब मैं शाम को उसके घर पहुँचा तो वह अपने कमरे की देहरी पर आराम कुर्सी डालकर कुछ पढ़ रही थी। मेरे आने के बाद उसने किताब को बिना बुकमार्क के ही बंद करके रख दिया।’

‘तो क्या तय किया तुमने, रुक सकते हो या नहीं?’ उसने मेरे बैठते ही यह सवाल किया।

‘पहली बार आप अपने जाने के बाद किसी को मकान में रुकने के लिए कह रही है। इससे पहले तो मैंने देखा है कि बाहर एक ताला लगाकर आप चली जाती थीं।’ मैंने कहा।

‘यह मेरे सवाल का जवाब तो नहीं हुआ। जो हम अभ्यास के साथ करते हैं, वही हमारा एकमात्र सच हो, यह ज़रूरी तो नहीं। इसके अलावा इस बार तुम्हें यहाँ छोड़ कर जा रही हूँ तो इसके पीछे भी कोई पुख़्ता वजह ही रही होगी।’ उसने थोड़ा खिन्न होकर कहा।

‘बिल्कुल वजह ज़रूर होगी, दरअसल मुझे रुकने से अधिक असुविधा इस बात को लेकर है कि मुझे अपने बिस्तर के अन्यत्र कहीं नींद नहीं आती है।’ मैंने सच्चाई से अपने मन की दुविधा कह दी।

यह सुनकर वह हँस पड़ी। थोड़ी देर तक उसने कुछ नहीं कहा। फिर बोली– ‘नींद बिस्तर पर नहीं आती है। वह तुम्हारे दिमाग़ में आती है और क्या बुरा है कि तुम कुछ रात यहाँ इस मकान में मेरे बिस्तर पर जाग कर ही बिता लो? मुझे पक्का यक़ीन है, इसमें भी तुम्हें लाभ ही होगा।’

‘मैं मैत्री में लाभ-हानि के गणित को नहीं लगाता हूँ, मगर हाँ जागने वाली बात से फ़ायदा हो सकता है, यह बात ज़रूर मुझे आकर्षित कर रही है।’ मैंने मुस्कुराते हुए कहा।

‘तो तुम रुक रहे हो न?’ उसने इस बार इनकार की गुंजाइश न रखने वाला सवाल किया।

‘हम्म!’ मैंने बस इतना कहा।

‘मगर यहाँ रुकने की मेरी एक शर्त है, क्या तुम्हें वह मंजूर होगी?’ उसने पूछा।

‘क्या?’ मैंने कौतूहल का अभिनय करते हुए पूछा।

‘तुम यहाँ पर रखी किसी भी चीज़ को प्रयोग कर सकते हो बशर्ते कि तुम प्रयोग करके उसे उसके नियत स्थान पर न रखो। लौटने पर मैं इस घर को अब और अधिक अस्त-व्यस्त देखना चाहती हूँ।’ उसने कहा।

‘ये कैसी शर्त हुई? अमूमन तो लोग अपनी चीज़ों को प्रयोग न करने की हिदायत देते हैं। एक आप हैं जो मुझे सब चीज़ें प्रयोग करने की छूट भी दे रही हैं और उन्हें उनके नियत स्थान पर न रखने की शर्त भी लगा रही हैं।’ मैंने उत्सुकता से पूछा।

‘हाँ! मैं यही चाहती हूँ कि जब मैं लौट कर आऊँ तो मुझे यहाँ कि तय व्यवस्था अपने डिसऑर्डर के साथ मिले। मैं ऑर्डर को कुछ दिन दीन-हीन देखना चाहती हूँ। मैं अपने धैर्य की परीक्षा करना चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ कि एक नई व्यवस्था हो, जहाँ मेरे मन मुताबिक़ कुछ भी न मिले। उसके बाद मैं उसे अपने जीवन में कैसे स्वीकार करती हूँ, उसे देख सकूँ।’

ये बात सुनने में रोचक लगी मुझे इसलिए मैंने कह दिया कि ‘ये शर्त मुझे मंज़ूर है।’ इनफैक्ट मैंने मन ही मन सोचा कि ये मेरे मन की बात हो गई। शायद मैं अनजान घर में रुकने को लेकर इसलिए भी संकोच में था कि मैं स्वभाव से अराजकतावादी था।

उसने कहा– ‘मैं तुम्हें मकान की चाबियाँ नहीं देकर जा रही हूँ, वह तुम्हें ख़ुद ही तलाशनी होंगी। फ़िलहाल मेरे चलने का समय हो गया है। मैं जब लौटूँगी तो उसकी तुम्हें कोई पूर्व सूचना न मिलेगी, इसलिए मेरे आने की सूचना का इंतज़ार न करना।’

इतना कहकर वह एक हैण्डबैग लेकर निकल गई। मैं यह सोच रहा था कि बिना किसी तैयारी के मैं यहाँ कैसे रहूँगा, जबकि मेरे कपड़े आदि भी मेरे कमरे पर ही पड़े हैं। तभी मुझे इस बात ने हौसला दिया कि यहाँ अब से सारे ऑर्डर को डिसऑर्डर के फॉर्म में लागू करना है। यह सोचकर सारी फ़िक्र जाती रही और मैं आराम कुर्सी पर आँखें मूंद कर यह सोचने लगा कि अब यहाँ मुझे क्या-क्या नहीं करना है।

एक दिन तीसरे पहर मैं सो कर उठा और थोड़ी देर यूँ ही अनमने भाव से बिस्तर पर लेटा रहा। तभी डोर बेल बजी। मैं समझ गया कि वह आ गई है। उसके जाने के बाद मैंने दिन नहीं गिने थे, मगर अनुमान से कह सकता हूँ कि वह एक पखवाड़े के बाद लौटी थी।

मैंने दरवाज़ा खोला तो उसे बाहर खड़ा पाया। वह मुस्कुरायी और अंदर दाख़िल हो गई। वैसे ईमानदारी से कहूँ मैं उस वक़्त इस क़दर अनमना था कि एक बार मन हुआ कि कह दूँ कि थोड़ी देर बाद आना। चूँकि घर उसका था इसलिए मैंने नहीं कहा।

सफ़र से लौटकर अक़्सर लोग थकान से भरे होते हैं, मगर वह उस दिन ग़ज़ब की ऊर्जा से भरी हुई थी। उसने बस एक सवाल पूछा– 'चाबी मिल गई थी तुम्हें?'

मैंने जवाब दिया- 'मैंने तलाश ही नहीं की। मैं किसी चीज़ की तब तक तलाश नहीं करता जब तक मुझे यह न लगने लगे कि इसके बिना जीवन अपरिहार्य है।'

'तो क्या तुम घर से बाहर ही नहीं गए?' उसने थोड़े आश्चर्य से पूछा।

'क्यों नहीं गया। मैं रोज वॉक पर गया हूँ। बस मकान को ताला नहीं लगाया। मैंने सोचा जब आप यह शर्त लगाकर ही गई थीं कि यहाँ कि व्यवस्था को ध्वस्त करना है मुझे, तो मुझे लगा सबसे पहले यही व्यवस्था भंग करनी चाहिए कि घर से बाहर निकलो तो घर को लॉक करके निकलो।' मैंने एक साँस में जवाब दिया।

‘तुम्हारी यही समझदारी मुझे तुम्हारे प्रति प्यार से भरती है कि तुम बिटविन द लाइन्स को बड़ी जल्दी समझ लेते हो। यक़ीन करना तुम्हारी इस बात ने मेरा दिल ख़ुश कर दिया है। यदि तुम मकान की चाबी तलाश लेते तो मुझे कोई ख़ास ख़ुशी न होती और अगर तुम इस बात की मुझसे शिकायत करते कि तुम्हें चाबी नहीं मिली तो मुझे तुम पर बड़ी कोफ़्त होती।’ उसने प्रेमिल होकर कहा।

‘अच्छा चाय पियोगी या कॉफ़ी?’ मैंने पूछा।

‘दोनों ही नहीं। मैं तुम्हारे लिए पिंक वोदका लाई हूँ। फ़िलहाल उसी को पीते हैं।’ उसने हँसते हुए कहा।

‘पिंक वोदका? ये कौन-सी वोदका हुई? पहली दफ़ा यह नाम सुना।’ मैंने पूछा।

‘जीवन में कुछ चीज़ें पहली दफ़ा ही मिलती हैं, मगर हम इस फ़िक्र में घुले रहे रहते हैं कि कहीं ये आख़िरी दफ़ा न हो, इसलिए पहली दफ़ा मिली चीज़ हमारे जीवन में तत्क्षण अर्थ खो देती है।’ उसने बैग में वोदका की बोतल टटोलते हुए कहा।

‘मगर मुझे ऐसी कोई फ़िक्र नहीं है।’ मैंने कहा।

‘तभी तो तुम इस स्पेशल वोदका फ्लेवर के सुपात्र हो!’ उसने हँसते हुए एक अलग ही शेप की बोतल मुझे थमायी।

मैंने बिना ब्रांड की तफ़सील में जाए और अन्य कोई बौद्धिक सवाल किए, तुरंत एक बढ़िया सत्संग जमा लिया।

व्यवस्था भंग का इससे बढ़िया उत्सव मैंने उसके बाद आज तक जीवन में नहीं देखा।

‘कथा कैसे आगे बढ़ती है?’ उसने पूछा

‘कथा को आगे बढ़ने के लिए घटनाएँ चाहिए होती हैं, उन्हीं के सहारे कथा आगे बढ़ती है।’ मैंने जवाब दिया।

‘क्या कोई कथा एकदम से ख़त्म होने के बाद भी लगातार बढ़ती रह सकती है?’ उसने पूछा।

‘हाँ! अलबत्ता कथा एकदम से कभी ख़त्म नहीं होती है। कथा के सम्पन्न होने के बाद वह हमारे मन पर सवार हो जाती है। कथा के अनेक पाठ इसलिए हो सकते हैं, क्योंकि हर कोई अपने ढंग से कथा को विस्तार देता है।’ मैंने जवाब दिया।

‘तो तुम्हारा यह कहना है कि हर कथा का एक संभावित अंत प्रत्येक पाठक या श्रोता के मन में होता है?’ उसने फिर से सवाल किया।

‘हाँ! मगर संभावित केवल कथा के दौरान होता है। कथा के ख़त्म होने पर उसके पास उस कथा का एक तयशुदा अन्त होता है। या यूँ कहिए पाठक या श्रोता यह चाहता है कि यदि अमुक कथा का वह लेखक होता तो वह इस कथा का अन्त इस प्रकार से करता।’ मैंने जवाब दिया।

‘तुम्हारे हिसाब से कोई कहानी क्या कहकर ख़त्म होती है।’ उसने पूछा।

‘मेरे हिसाब से कोई भी कहानी यह कहकर ख़त्म होती है कि इसमें अपनी कहानी की तलाश करो।’ मैंने मुस्कुराते हुए जवाब दिया।

इसके बाद उसने कोई सवाल नहीं किया। हम थोड़ी देर चुप बैठे रहे।

मैं जब चलने लगा तो उसने पूछा– ‘तुम अपनी कहानी का क्या संभावित अन्त चाहते हो?’

मैंने कहा– ‘अभी सोचा नहीं कोई अन्त।’

‘मगर मैंने सोच लिया है। वह बताने जैसा कुछ नहीं है। एक दिन तुम्हें ख़ुद पता चल जाएगा, मगर अच्छी या ख़राब बात यह रहेगी कि तुम उस अन्त के बाद उसका कोई विस्तार विकसित नहीं कर पाओगे।’

मैंने इस बात का जवाब नहीं दिया। उसके बाद उसने मुझे जाते हुए टोका भी नहीं।

‘जिन दिनों मैं तुम्हारे सम्पर्क में नहीं रहती, उन दिनों क्या तुम किसी अन्य स्त्री के सम्पर्क में रहते हो?’ उसने एक दिन पूछा।

‘क्या आपका आशय किसी क़िस्म के फ़्लर्ट से है?’ मैंने सवाल के जवाब में सवाल किया।

‘फ़्लर्ट तो एक चलताऊ क़िस्म का टर्म है। मैं यह जानना चाहती हूँ कि मेरे अलावा तुम्हारे जीवन में कितनी स्त्रियाँ हैं?’ उसने कहा।

‘स्त्रियाँ? आपका सवाल बहुवचन में है, इसलिए मैं इसका एकवचन में कैसे जवाब दूँ?’ मैंने कहा।

‘वचन व्याकरण की सीमा है, जीवन की नहीं, इसलिए तुम दे सकते हो। बशर्ते तुम इस सवाल का जवाब देना चाहो।’ उसने मुस्कुराते हुए जवाब दिया।

‘मैं इसका ठीक-ठीक जवाब दूँगा, मगर क्या मैं पहले एक सवाल पूछ सकता हूँ?’

‘बिल्कुल!’ उसने कहा।

‘आपको ऐसा क्यों लगा कि मैं सतत स्त्रियों के सम्पर्क में रहता हूँ?’ मैंने पूछा।

‘क्यों के अनेक जवाब हो सकते हैं, मगर वे दरअसल जवाब नहीं होंगे, वह आपके सवाल की व्याख्या होगी, इसलिए मैं बस इतना कहूँगी कि मुझे जो महसूस

हुआ, वही मैंने पूछ लिया। इसके पीछे के 'क्यों' को जानने के लिए जिस कौतूहल की ज़रूरत है, वह फ़िलहाल मेरे पास नहीं है।' उसने कहा।

'कहीं ये स्त्रियोचित ईर्ष्या तो नहीं है, जिसकी आप शिकार हो गई हों?' मैंने हँसते हुए पूछा।

'नहीं। ये ईर्ष्या नहीं है, यदि ये ईर्ष्या होती तो मैं ये सवाल सबसे पहले ख़ुद से करती। मैंने यह सवाल तुमसे किया है, इसलिए मैं आश्वस्त हूँ।' उसने कहा।

मैंने कहा– 'मेरे जीवन में कितनी स्त्रियाँ हैं, यह महत्वपूर्ण नहीं है। उन स्त्रियों के मध्य मैं कितना उपस्थित हूँ, वह महत्वपूर्ण है। संख्या एक अंक है मगर मनुष्य की उपस्थिति एक इकाई। मेरे जीवन में जितनी भी स्त्रियाँ उपस्थित या अनुपस्थित हैं, उनका आपस में एक अज्ञात तादात्म्य है। यह एक बड़े चित्र की तरह है जिसका सबसे उपेक्षित कोना भी उसके सौन्दर्यबोध के लिए उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि उस चित्र का केन्द्रीय भाग।'

'मेरा ख़याल है कि हम जिसके समक्ष होते हैं, हमारा आकार उससे अपना मिलान कर रहा होता है। लोक की दृष्टि से यह अवसरवादी जैसी ध्वनि ज़रूर दे सकता है, मगर कम-से-कम मैं अपने निजी सन्दर्भ में इस बात की आश्वस्ति दे सकता हूँ। मैं जब आपसे मुख़ातिब होता हूँ तो अपनी सम्पूर्णता में उपस्थित होता हूँ।' इतना कहकर मैं थोड़ी देर चुप हो गया।

'तुम नाहक स्पष्टीकरण दे रहे हो? मैंने केवल एक वाक्य में एक बात पूछी थी।' उसने मेरे एकांत को तोड़ते हुए कहा।

'यदि मैं उस बात का एक वाक्य में जवाब देता तो निःसंदेह आपको वह झूठ लगता।' मैंने कहा।

'सच और झूठ के संस्करणों की परवाह किए बग़ैर तुम मेरे सवाल का जवाब दे

सकते हो और यह बात अभी के लिए नहीं कह रही हूँ, यह बात सदा के लिए है।' उसने कहा।

'ठीक है आगे ख़याल रखूँगा।' मैंने कहा

'ख़याल रखना तुम्हें ज़रूर किसी स्त्री ने सिखाया होगा।' उसने हँसते हुए कहा।

फिर बोली– 'छोड़ो ये बेकार की बातें, अब ये बताओ कि स्त्रियों के संग ने तुम्हें सँवारा या बिगाड़ा?'

मैंने कहा– 'पहले बिगाड़ा फिर सँवारा और फिर बिगाड़ा।'

'कोई बात नहीं, इस बार सही जगह पर हो। यहाँ से सँवर कर जाने के बाद तुम्हें दुनिया की कोई स्त्री बिगाड़ नहीं सकती है।' उसने कहा।

इसके बाद मैं कुछ नहीं बोला। शायद यहीं से मेरे सँवरने की शुरुआत हो चुकी थी।

‘क्या आपने एक बात नोटिस की कि हमारी बातों में कोई संगति नहीं है। जैसे हर बात अधूरी छोड़ने की जल्दबाज़ी हो हमारे अंदर।’ मैंने एक दिन फ़ोन पर कहा।

‘फ़ोन पर इसका जवाब देना भी एक क़िस्म की जल्दबाज़ी ही होगी। जब मन और समय हो, आकर मिलो।’ उसने इतना कहकर फ़ोन काट दिया।

लगभग एक महीने बाद मैं उसके घर पहुँचा।

‘जल्दबाज़ी की बातों को देर से सुनने की बढ़िया आदत है तुम्हारे अंदर।’ उसने मेरे बैठते ही कहा।

‘मैं इतने दिन बाद आया हूँ, क्या इस कारण आप व्यंग्य कर रही हैं?’ मैंने पूछा।

‘नहीं। दिनों की दूरी से शायद मुझे फ़र्क़ नहीं पड़ता है।’ उसने कहा।

‘आपने ‘शायद’ का प्रयोग किया है इसलिए मैं इसे यह समझ रहा हूँ कि आपको फ़र्क़ पड़ता है।’ मैंने थोड़ा हँसते हुए कहा।

‘तो उस दिन तुम फ़ोन पर कह रहे थे कि हमारी बातों में कोई संगति नहीं है?’ उसने कहा।

‘हाँ! मुझे लगता है हमारी अब तक की बातों को यदि एक सूत्र में पिरोया जाए तो उससे कोई माला नहीं बन सकती है, जैसे हर बात अपने आप में एक सम्पूर्ण आख्यान हो।’ मैंने कहा।

‘बातों में संगति तलाशना उनका काम है जिन्हें बातों के निहितार्थ विकसित करने होते हैं। मेरे ख़याल तुम उन लोगों में से तो नहीं हो जो बातों के निहितार्थ विकसित करके किसी सम्बन्ध को परिभाषित करना चाहते हों।’ उसने कहा।

‘मैं बिल्कुल निहितार्थ विकसित नहीं करना चाहता हूँ। बस मुझे लगा कि हमारे बीच जितनी भी बातें हुईं, उनमें उनके सूत्र न अतीत में उपस्थित होते हैं और न वह भविष्य में सन्दर्भ के तौर पर कभी प्रयोग की जाती हैं। हालाँकि देखा जाए तो एक तरह से यह अच्छी बात भी है कि बातों की स्मृतियाँ आपस में मेल-मिलाप नहीं रखना चाहतीं अन्यथा मन के राग को अपने अर्थ विकसित करने की एक आज़ादी मिल जाती।’ मैंने कहा।

‘मन के राग किसी क़िस्म के बंधन या आज़ादी की प्रतीक्षा करते हैं, क्या तुम्हें ऐसा लगता है ?’ उसने विस्मय से भरते हुए पूछा।

‘फ़िलहाल इसके जवाब के लिए मैं आश्वस्त नहीं हूँ, इसलिए कहूँगा शायद नहीं।’ मैंने जवाब दिया।

‘अब तुमने ‘शायद’ का सहारा लिया है, मगर मैं इसका कोई अर्थ विकसित नहीं कर रही हूँ। पर इतना ज़रूर कहूँगी कि मन के राग चैत की चटख़ धूप के जैसे होते हैं। जो जितनी खिलती जाती है हवा उतनी सुहानी लगने लगती है। किसी से रागात्मक रिश्ते होना इस बात की कतई गारंटी नहीं होते कि हम उस शख़्स को सम्पूर्णता में चाहते हों।’

‘किसी के प्रति राग का उपजना इस बात का ज़रूर संकेत देता है कि अमुक व्यक्ति तुम्हें कुछ-कुछ हिस्सों में बेहद अच्छा,सच्चा और अपना लगने लगा है।’ इतना कहकर वह चुप हो गई।

मैं थोड़ी देर मन के राग की ध्वनि अपने चिर एकांत में सुनता रहा और बिना कुछ कहे वहाँ से चुपचाप चला आया।

मैंने एक दिन पूछा– 'आपकी उम्र क्या है?'

उसने कहा– 'यूँ समझ लो कि आधे से अधिक बीत चुकी है।'

'क्या आपको अन्य महिलाओं की भाँति उम्र पूछना असहज या शिष्टाचार के विरुद्ध लगता है?' मैंने पूछा।

'नहीं। बिल्कुल नहीं। मुझे उम्र पूछना शिष्टाचार के विरुद्ध नहीं लगता है, मगर एक समय में हमारी अलग-अलग उम्र हो सकती है। संभव है जब मैं तुमसे बात कर रही होती हूँ तो मैं बिल्कुल तुम्हारी उम्र की हूँ, मगर जब मैं किसी सब्ज़ी वाले से बात करती हूँ तो मेरी उम्र एकदम बदल जाए। इसलिए अपनी ठीक-ठीक उम्र बता पाना मेरे लिए हमेशा मुश्किल काम रहा है। यदि तुम मेरी देह की उम्र जानना चाहते हो तो वह भी एक ख़ास परिधि में बंधी नज़र आती है। साल बढ़ने से न उम्र बढ़ती है और न घटती है। इसलिए लौकिक रूप से उम्र एक संख्या-भर है। उससे कोई जो भी अनुमान विकसित करेगा, वह हमेशा आधा-अधूरा ही होगा। मैं इसलिए उम्र को बताने और पूछने को लेकर न उत्साहित रहती हूँ और न यह सवाल मुझे बेचैन करता है।' उसने जवाब दिया।

'आपके हिसाब से मेरी उम्र क्या होगी?' मैंने पूछा।

'जो बात तुम्हें आंकिक रूप से पुष्ट पता है, उसकी पुष्टि तुम मुझसे क्यों कराना चाहते हो? क्या तुम मेरी अनुमान-क्षमता को परखना चाहते हो।' उसने हँसते हुए कहा।

‘नहीं मुझे आपकी अनुमान क्षमता पर ख़ुद से अधिक भरोसा है। मैं बस ख़ुद की जानकारी पर राय चाह रहा था दरअसल।’ मैंने कहा।

‘मेरे ख़याल से तुम भौतिक उम्र में मुझसे थोड़े छोटे हो, दिल में बराबर के हो और दिमाग़ की मैं कभी तुलना नहीं करती हूँ।’ उसने गंभीरता से जवाब दिया।

‘दिमाग़ में तुलना क्यों नहीं करतीं आप?’ मैंने पूछा।

‘दरअसल दिमाग़ एक भ्रम है, जो मुझे ख़ुद के बारे में और तुम्हें ख़ुद के बारे में कभी भी हो सकता है। मेरा अनुभव मेरा सच है, जबकि तुम्हारा अनुभव तुम्हारा सच है। ऐसे में कोई एक सम्यक् स्थापना होनी मुश्किल होती है। मैं इसलिए अपनी बातों या मान्यताओं को लेकर कभी आग्रही नहीं होती हूँ और प्रायः तुम्हें भी ऐसा करते नहीं देखा है, इसलिए मैं दिमाग़ को कमतर या बेहतर नहीं कह सकती हूँ।

तुमने कभी शांत जल में एक कंकर मारकर देखा है? हम अपनी पूरी क्षमता से उस जल के मध्य तक पहुँचना चाहते हैं। हमारे सारे अनुमान उसी दिशा में आगे बढ़ते हैं, मगर कभी नहीं पहुँच पाते हैं, इसलिए बाद में बैठकर लहरें गिनने में अपना सुख तलाशने लगते हैं। जब हम किसी की उम्र पूछते हैं या कोई हमारी जानना चाहता है तो मुझे ठीक यह दृश्य याद आता है। उम्र एक मध्य बिंदु है, जो अज्ञात है। हम उसके इर्द-गिर्द ज़रूर पहुँच सकते हैं, मगर वास्तविक जगह कभी नहीं। इसलिए उम्र को छोड़ो, लहरें गिनना शुरू करो और किनारों के ख़त इधर से उधर पहुँचाओ। इसी में मेरी और तुम्हारी समस्त उपयोगिता निहित है।’

‘तुम जहाँ रहते हो, उस जगह का पता मुझे एसएमएस कर दो।’ एक दिन यह मैसेज मुझे मिला।

मैंने अपने रूम का पता जवाबी एसएमएस के ज़रिए भेज दिया।

हालाँकि मैं यह बात ज़रूर सोचता रहा कि आजतक कभी मेरा पता उसने नहीं पूछा था फिर आज अचानक से पता क्यों पूछ लिया है ?

ख़ैर ! इस बात को हुए लगभग एक पखवाड़ा बीत गया और मैं यह बात भूल भी गया।

एक दिन मेरी डोरबेल बजी। मैंने सोचा कि बहुत दिन से अख़बार वाले के पैसे नहीं दिए हैं संभवतः वही होगा। वैसे भी वह अक़्सर तीसरे पहर ही अख़बार के पैसे लेने आता था।

मैंने दरवाज़ा खोला तो देखा सामने वह खड़ी थी।

उसका आना अनपेक्षित ज़रूर था, मगर अवांछित बिल्कुल नहीं था। इसलिए उसे देखकर मेरी आँखें ख़ुशी से चमक उठीं।

मैंने कहा– आइए... आइए आपका ही इंतज़ार था।’ हालाँकि मैं यह बात झूठ बोल रहा था और उसने मेरा यह झूठ तुरंत पकड़ भी लिया था।

उसने कहा– ‘जिसका इंतज़ार होता है, उसके आने में यह बात कतई नहीं बोली जाती है।’

इसके बाद वह अंदर आ गई। मेरे अस्त-व्यस्त कमरे को देखकर उसे आश्चर्य नहीं हुआ, बल्कि उसने किताबों को एक तरफ़ करके ख़ुद ही बिस्तर पर अपने बैठने की जगह बना ली।

किताब हटाते समय उसने एक किताब को अलग करके रख दिया। यह किताब मैक्सिको के मांत्रिक डॉन जुऑन के विषय में थी, जिसे कार्लोस कास्टिनेडा ने लिखा था। किताब का नाम था- ‘A Separate Realty’

‘...तो तुम्हारी सेपरेट रियल्टी क्या है?’ उसने पूछा।

‘मैं अभी तक खोज नहीं पाया हूँ, मगर तलाश जारी है।’ मैंने हँसते हुए कहा।

इससे पहले वह दूसरा सवाल पूछती, मैंने पूछ लिया कि ‘आप चाय लेंगी या कॉफ़ी?’

‘दोनों ही नहीं। अगर थोड़ी शराब पिला सकते हो तो पिला दो।’ उसने हँसते हुए कहा।

‘मेरे पास बीयर के दो कैन रखे हुए थे। मैंने कहा– ‘संयोग देखिए आज मैं शराब भी पिलवा सकता हूँ।’

‘मैंने दोनों बीयर कैन खोले और एक उसको थमा दिया।’

‘मुझे अपनी कैन ख़ुद खोलना पसंद है, मगर चूंकि आज तुम्हारी जगह पर हूँ, इसलिए तुम्हारी यह गुस्ताख़ी क्षम्य है।’ उसने ठहाका मार हँसते हुए कहा।

‘मैं एक अच्छा साक़ी हूँ। ऐसा मेरे दोस्त कहा करते थे।’ मैंने थोड़ा आत्ममुग्ध होते हुए कहा।

'जिन वाक्यों में 'थे' लगा होता है वह दरअसल निस्तेज होते हैं, हम बस मोह के कारण उन्हें ढोते रहते हैं। मैं चाहती हूँ कि तुम अपनी सारी बातें 'हैं' के साथ समाप्त करो।'

मैंने कहा– 'क्या मैं भविष्य की कुछ बातें कर सकता हूँ ?'

'नहीं। मुझे अतीत और भविष्य दोनों में ही कोई दिलचस्पी नहीं है।' उसने दृढ़ता से जवाब दिया।

'हाँ ! तो मैं पूछ रही थी कि तुम्हारी सेपरेट रियल्टी क्या है ?'

' आपको क्या लगती है ?' मैंने सवाल के बदले सवाल किया।

'मेरे पास तुम्हें लेकर जो मान्यता है वह कुछ अंशो में हमेशा संदिग्ध रहेगी, क्योंकि मुझे तुम प्रिय हो। जो हमें प्रिय होता है उसके लिए हम एक अवास्तविक यथार्थ रचते है क्योंकि ऐसा करना हमें सुख देता है। फिर भी अगर तुम मेरे मुँह से ही सुनना चाहते हो तो सुनो-

तुम्हारी सेपरेट रियल्टी यह है कि तुम फ़िलहाल अपने वक़्त से आगे चल रहे हो। यह बात आज तुम्हें सुख दे रही है, मगर एक दिन यही बात तुम्हें बेहद अकेला करके छोड़ देगी। हालाँकि मुझे पूरा यक़ीन है कि तुम्हारा कभी पतन नहीं होगा, क्योंकि तुम अटकने की बजाय भटकने में विश्वास रखते हो। तुम्हारे पास नाव है, उत्साह है और किनारे से दोस्ती भी है। बस तुम्हारे पास नदी की गहराई का सही-सही अनुमान नहीं है। यदि तुम्हारे पास यह अनुमान होता तो तुम अकेले नाव लेकर नदी में नहीं उतरते बल्कि इस नदी को डूबकर और तैरकर पार करते।'

‘मैं आज रात यहीं रुकना चाहती हूँ। अगर तुम्हें कोई एतराज़ न हो।’ उसने कहा।

‘नहीं मुझे कोई एतराज़ नहीं है। इसी बहाने आपका साथ मिल जाएगा मुझे।’ मैंने कहा।

‘बहाने से मिला साथ कुछ अर्थों में दुर्लभ होता है और कुछ अर्थों में बेहद सतही। दुर्लभ इसलिए कि हमेशा आपका मन बहाने तलाशे, यह ज़रूरी नहीं होता है। एक समय जीवन में ऐसा भी आता है, जब आप कोई बहाना तलाशना बंद कर देते हैं, बल्कि अपनी आँखों के सामने ही अपने जीवन के सबसे ज़रूरी बहाने को तलाशने की वजह खो देते हैं। और सतही इसलिए कि यह बेहद तात्कालिक बात है कि हम किसी घटना में अपना कोई बहाना तलाशना शुरू कर दें। कितना अच्छा हो अगर हम उस घटना का कोई अर्थ विकसित न करें। बस बहते हुए जल की तरह उसके साथ बहते हुए अपने किनारों से बहुत दूर निकल जाएँ।’ इतना कहकर वह चुप हो गई।

‘मेरा आशय दोनों से ही नहीं था। दरअसल आपका यहाँ रुकना मेरे लिए ख़ुशी और गौरव का पल है। शायद इस बात के उत्साह में मैं बहाने का ज़िक्र कर बैठा। कम-से-कम आपको लेकर मेरे जीवन में कोई बहाना नहीं जुड़ा है, न आपसे मिलने का और न आपने बिछड़ने का।’ मैंने कहा।

‘यह एक अच्छी बात है। हम ताउम्र अपने जीवन को बाहर की दुनिया के हिसाब से संपादित करते रहते हैं, जबकि बाहर की दुनिया इतनी गतिशील होती है कि

उसके कारण किया गया कोई भी परिवर्तन आपके जीवन में शामिल होते ही अप्रासंगिक हो जाता है, फिर आप उसका मिलान कभी अपने अतीत से करते हैं तो कभी उसे भविष्य के लिए उपयोगी मानने लगते हैं, जबकि वह घर की देहरी की तरह आपके वर्तमान में भारहीन टँगा होता है।' उसने कहा।

'क्या तुम्हारे मन में यह ख़याल आया कि मैंने यहाँ रुकने के लिए रात का ही चुनाव क्यों किया?' उसने पूछा।

'शायद रात में मनुष्य अपने मौलिक स्वरूप में रहता है, उस पर रौशनी में साफ़ नज़र आने का कोई नैतिक दबाव नहीं होता है।' मैंने जवाब दिया।

'रात को नैतिक-अनैतिक से जोड़ने की परम्परा पौराणिक क़िस्म की है। यह एक कोरा गल्प है। अलबत्ता तो मनुष्य की नैतिकताएँ बहुत निजी स्तरों में एक पाखंड भर होती है, मगर यदि उन्हें व्यवस्था का एक अंग मानते हुए देखा जाए तो भी उनका रात या दिन से कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष समबन्ध नज़र नहीं आता है।'

'मैंने तुम्हारे यहाँ रात को रुकना इसलिए चुना, क्योंकि मुझे लगता है रात का एकांत दिन के शोर से कई गुना बड़ा होता है। रात हस्तक्षेप रहित होती है और दिन में कोलाहल बना रहता है। दिन की ग़लतियों को क्षमा करने के लिए ईश्वर ने रात बनाई है।' उसने कहा।

'और रात की ग़लतियों को क्षमा के लिए ईश्वर ने कौन सा प्रावधान किया है?' मैंने पूछा।

'रात में मनुष्य ग़लतियाँ नहीं करता है, बल्कि अपने जीवन की गलतियों को सुधारता है। अगर मनुष्य चैतन्य है तो रात में उसे किसी क़िस्म के बाहरी प्रकाश की ज़रूरत नहीं होगी। रात ख़ुद के अंदर उतरने के लिए सबसे उपयुक्त होती है। बावजूद इसके यदि किसी सुबह तुम्हें यह बोध होता है कि रात में तुमने कोई ग़लती की है तो इसका एक ही मतलब है कि तुमने रात से ठीक से मुलाक़ात नहीं की। तुम

रात के भ्रम में दिन को देखते रहे हो। सुबह की स्मृतियों में गलतियों के बोध का बचना इस बात का प्रतीक है कि रात ने तुम्हें अपने एकांत का अभी सच्चा साथी घोषित नहीं किया है।' उसने कहा।

फिर ऐसा क्यों कहा जाता है– 'इस रात की सुबह नहीं'। मैंने पूछा।

'ऐसा इसलिए कहा जाता है क्योंकि दरअसल रात की कभी सुबह नहीं होती है। रात अगर सच्ची है तो वह रात से रात में दाख़िल होती है। जिसे तुम सुबह कहते हो रात के बाद का उजाला हो सकता है।'

वह रात मेरे जीवन की सबसे गहरी रात थी। उसके बाद से मैं रात से रात में प्रवेश करने में निपुण हो गया था। दिन अब केवल मध्यांतर था, जिसे देखकर मैं अपनी घड़ी को मिला लिया करता था बस।

‘मैं कुछ दिन के लिए समंदर किनारे रहने जा रही हूँ। यदि तुम्हारा मन हो तो साथ चल सकते हो।’

उसका यह एसएमएस एक दिन मुझे मिला। उसका कोई मैसेज तक़रीबन तीन महीने बाद मुझे मिला था। वह हवा की तरह थी। उसे कब बहना है और कब अपनी दिशा बदल लेनी है, यह उसे ठीक-ठीक पता था।

मैंने जवाब में लिखा ‘ठीक है चलूँगा।’

उसने फिर कुछ नहीं पूछा। बस दो दिन बाद वह जगह बतायी, जहाँ मुझे मिलना था। इन दो दिनों में मैं यह सोचता रहा कि हम समंदर के किनारे किस साधन से जाएँगे?

मैं अपना पिट्ठू बैग टाँग कर नियत जगह पर पहुँच गया। थोड़ी ही देर में उसकी कार आती दिखी। कार देखकर मैं थोड़ा चौंक गया और यह सोचकर थोड़ा चिंतित भी हुआ कि क्या हम कार से लगभग दो हज़ार किमी. का सफ़र करने जा रहे हैं?

मेरे कार में बैठते ही उसने कहा– ‘शायद तुम यह सोच रहे होगे कि कार से इतना लम्बा सफ़र कैसे करेंगे?’

मैंने कहा– ‘हाँ सोच तो यही रहा हूँ।’

उसने हँसते हुए कहा– 'ठीक वैसे जैसे दूर देश साईबेरिया से पक्षी उड़कर हमारे देश तक आते हैं। बस तुम्हें इस यात्रा में पक्षियों जैसा मोह बनाकर रखना पड़ेगा।'

'मेरे लिए पक्षियों से अधिक आपके साथ का मोह है और मुझे लगता है इस मोह के चलते मैं सात समंदर भी पार कर सकता हूँ।' मैंने कहा।

'वैसे मैं तुम्हारे साथ पहले लद्दाख जाना चाहती थी, मगर फिर मुझे लगा अपने सुख के लिए तुम्हें इतनी ऊँचाई पर ले जाना ठीक नहीं होगा, इसलिए मैंने समंदर को चुना। समंदर के नज़दीक मनुष्य आती-जाती लहर देख सकता है, जो हमें यह बात बताती है कि हर लम्हा कितना मूल्यवान है। एक-एक पल जैसे बीतता है वह उस रूप में फिर कभी लौटकर नहीं आता है।' इतना कहकर वह चुप हो गई।

मैं इस बात पर केवल मुस्कुराया।

लगभग सौ किलोमीटर गाड़ी ड्राइव करने के बाद उसने कहा– 'चलो चाय पीते हैं।' हम चाय पीने के लिए हाई वे के एक ढाबे पर रुक गए।

चाय पीते हुए उसने कहा– 'हमारी इस यात्रा के कुछ नियम रहेंगे यदि तुम्हें उन नियमों से कोई आपत्ति है तो बता सकते हो, हम दोनों उसकी समीक्षा करके एक नया नियम बना लेंगे।'

'तो नियम सुनो–

इस यात्रा में कोई निहितार्थ विकसित नहीं करेगा। यह यात्रा एक दूसरे का और ख़ुद का साथ महसूस करने के लिए की जा रही है।

जिसे नींद आएगी वह पिछली सीट पर जाकर सो जाएगा। हम दोनों एक दूसरे को नींद से नहीं जगाएँगे।

ड्राइव तब तक करनी है, जब तक देह आराम के लिए विद्रोह न कर दे।

ड्राइविंग में दूसरे को सलाह नहीं देनी है कि ऐसे चलाओ-वैसे चलाओ

शाम जहाँ होगी वहीं रुक जाएँगे।

चाय कोई अकेला भी पी सकेगा, मगर शराब अकेले पीने की मनाही होगी। उसके लिए दोनों को पीना ज़रूरी होगा।

मंज़िल पर पहुँचकर रास्तों की बातें करना निषिद्ध रहेगा।

और सबसे आख़िर का नियम यह रहेगा कि हम एक-दूसरे की ज़िम्मेदारी नहीं है। हम यहाँ केवल ख़ुद के लिए साथ हैं इसलिए ख़ुद ही ख़ुद को सम्भालना होगा और कोई भी बात ऐसी नहीं करनी है, जो फ़िल्मों, किताबों और दर्शनों में कई-कई बार दोहरायी जा चुकी हो। मतलब बातों में नूतनता का होना अनिवार्य है वरना मौन उससे बेहतर है।'

'मुझे किसी नियम से कोई आपत्ति नहीं है।' मैंने जवाब दिया।

उसने अपने दोनों हाथ खोले और बोली– 'इस बात पर आ गले लग जा!'

गले लगते समय उसने मेरे कान में बुदबुदाया– 'अब तक का तुम मेरा सर्वश्रेष्ठ चयन हो।'

समंदर किनारे यह हमारी पहली रात थी।

जहाँ हम रुके थे वहाँ से लाइट हाउस दिखता था।

मैं शाम से ही अकेला समंदर किनारे टहल रहा था। पता नहीं क्यों मुझे यह लग रहा था कि मैं अपने ख़ुद के दयार से बहुत दूर निकल आया हूँ। इतनी दूर कि मुझे अब वापसी की फ़िक्र भी नहीं हो रही है। अगर मैं थोड़ी देर के लिए अकेला होकर सोचता हूँ तो मुझे इस बात की फ़िक्र ज़रूर होती है कि कल जब मुझे इन बीते हुए दिनों की याद आया करेगी तो ख़ुद को उस समय कैसे व्यवस्थित कर सकूँगा।

शाम से ही मन पर एक अजीब-सी उदासी तारी थी। 'उदासी' मैंने एक शब्द चुन लिया है, मगर सच बात तो यह है कि उस शाम किस मनःस्थिति में था, उसको ठीक-ठीक बताने के लिए मेरे पास कोई शब्द नहीं था। यदि ख़ुशी और ग़म के मध्य का कोई स्थान होता होगा तो मैं उस दिन उस स्थान के बेहद क़रीब अकेला बैठा था।

थोड़ी देर बाद मैं रिज़ॉर्ट की तरफ़ लौट आया। हम एक ही कमरे में रुके हुए थे। मैं जब कमरे में गया तो वह बालकनी में खड़ी समंदर को देख रही थी। मुझे लगा उसके एकांत में बाधा डालना उचित नहीं होगा इसलिए मैं अपने बैग से एक किताब निकाल कर पढ़ने लगा। हालाँकि उस वक़्त मेरा पढ़ने का मन बिल्कुल भी नहीं था।

अचानक उसने मेरी तरफ़ देखा और पूछा– 'क्या पढ़ रहे हो?'

मैंने कहा– 'अज्ञेय का उपन्यास है– नदी के द्वीप।'

'समंदर के नज़दीक आकर भी तुमने नदी का साथ नहीं छोड़ा है। यह बात मुझे अच्छी लगी वरना अक़्सर बड़ी भूमिका देखकर लोग छोटे परिचयों को नज़रअंदाज़ कर देते हैं।' उसने कहा।

'आज तुम कुछ अनमने से दिख रहे हो। कहीं तुम्हें यहाँ मेरे साथ आने से कोई गिल्ट या अफ़सोस तो नहीं हो रहा है?' उसने पूछा।

'नहीं। मुझे अफ़सोस नहीं हो रहा है मगर समंदर के किनारे आकर मेरा अनुभव पहाड़ की यात्रा से एकदम भिन्न है। पहाड़ पर जाकर मुझे अस्तित्व की लघुता का बोध होता था। मैं पहली बार समंदर किनारे आया हूँ। यहाँ आकर मुझे ख़ुद के खो जाने का भय हो रहा है। मैं क्षितिज तक देखता हूँ तो एक विराट शून्य नज़र आता है। मुझे आज शाम ऐसा महसूस हुआ जैसे समंदर अपने किनारे आने वाले हर शख़्स से बेपरवाह है। वह ख़ुद में इतना मसरूफ़ है कि उसे बाहर झाँकने में ज़रा-सी भी दिलचस्पी नहीं है। जबकि पहाड़ पर जाकर ऐसा लगता था जैसे पहाड़ कोई बुज़ुर्ग है जो आपका हमेशा इंतज़ार करता है।' मैंने कहा।

'तुम फ़िलहाल तुलना से गुज़र रहे हो, इसलिए मैं तुम्हारी मान्यताओं का कोई खंडन प्रस्तुत नहीं करूँगी, मगर यह सच बात है कि पहाड़ पर जाने के लिए दिल बड़ा करना पड़ता है और समंदर के किनारे दिमाग़। तुम दिल और दिमाग़ के मुकदमे में उलझ गए हो। तुम्हारे लिए बेहतर होगा कि आज थोड़ी शराब पी लो। फिर हम आगे की बातें करेंगे।' उसने कहा।

'क्या आप नहीं पिएँगी? इस सफ़र की तो शर्त थी कि शराब कोई अकेले में नहीं पिएगा।' मैंने पूछा।

‘शर्तों की उपयोगिता उन्हें ध्वस्त करने में ही होती है, वरना वह अहंकार उत्पन्न करती हैं। आज मेरा मन नहीं है। हाँ कल सुबह नाश्ते पर ज़रूर मैं तुमसे पूछूँगी।’ उसने कहा।

मैंने कहा ‘ठीक है’ और फ्रिज से दो बीयर की कैन निकाल लीं।

‘मेरे ख़याल से आज तुम्हें हार्ड ड्रिंक की ज़रूरत थी। बीयर सेलिब्रेशन के काम आती है और हार्ड ड्रिंक ख़ुद को समझने के लिए।’ उसने हँसते हुए कहा।

‘आपका कहना सही है वैसे, मगर आपकी शर्त की तरह आज मैं आपकी मान्यता को ध्वस्त करके बीयर के ज़रिए ही ख़ुद को जानने की कोशिश करता हूँ।’ मैंने हँसते हुए जवाब दिया।

‘तुम हँसते हुए बहुत निर्मल लगते हो। इसी बात पर कैन इधर दो, मैं खोल कर तुम्हें देती हूँ।’ उसने मुस्कुराते हुए कहा।

मैंने बीयर की पहली सिप में पहली बार अपनी हँसी की निर्मलता को एक साथ देखा और महसूस किया। उसके हाथ में कुछ ऐसा जादू था।

इस बार समंदर की यात्रा पर मेरा मन कुछ अधिक जम नहीं रहा था। हालाँकि मुझे उसका साथ अच्छा ज़रूर लगा। मगर यह पहली ऐसी यात्रा थी जिसमें मैं दो हिस्सों में विभाजित रहा। जब उसके साथ होता तो मेरा एक अलग किरदार होता। और जैसे ही मैं अकेले समंदर किनारे घूमने जाता तो मेरा दूसरा किरदार बाहर आकर खड़ा हो जाता। ऐसा नहीं था कि मैं किसी सही-ग़लत या नैतिक-अनैतिक के संकट से गुज़र रहा था। मगर मुझे उसके साथ का लोभ होने लगा था। पहली बार मैंने उस बात की कल्पना की, कि वह कैसा वक़्त होगा जब वह मेरे सम्पर्क में नहीं रहेगी। थोड़े निर्लज्ज शब्दों में कहूँ तो मुझे उसकी आदत हो गई थी।

इस यात्रा के दौरान हमने एक रात बोट पर बितायी थी। ये बोट कश्मीर के हाउसबोट जैसी नहीं थी मतलब उनसे थोड़ी बड़ी थी, और इसका वास्तु भी भिन्न था। मुझे याद है उसने मुझे दोपहर में बताया कि आज की शाम वह एक बोट पर बिताएगी। उसने मुझसे पूछा कि अगर तुम्हारा मन हो तो तुम भी साथ चल सकते हो। उसकी सबसे अच्छी बात मुझे यही लगती थी कि वह अपने किसी निर्णय को मुझ पर थोपती नहीं थी। उसकी बातों में असहमत होने का हमेशा चुनाव मिलता था। वह सच्चे अर्थों में एक लोकतांत्रिक साथी थी।

उसके पूछने पर मैंने मना कर दिया। मगर जब वह निकलने वाली थी, मैंने कहा– 'मैं भी आ रहा हूँ।' उसने हँसते हुए कहा– 'मुझे पहले से ही पता था कि तुम ज़रूर चलोगे, इसलिए मैंने वहाँ दो लोगों के रुकने की व्यवस्था की है।'

‘क्या हम रात में वहीं रुकने वाले हैं?’ मैंने पूछा।

उसने कहा– ‘शाम को छिड़ी बातें अक़्सर देर रात तक पीछा करती हैं। हम फ़िलहाल शाम बिताने के लिए जा रहे हैं, मगर मैं नहीं चाहती कि कोई बात तुम्हारा देर रात तक पीछा करे। इसलिए अगर ज़रूरी हुआ तो हम नाइट स्टे बोट पर कर लेंगे।’ उसने मुझसे आगे चलते हुए यह कहा।

यह सुनने के बाद मुझे जाने क्या सूझी, मैं थोड़े तेज़ क़दमों से आगे बढ़ा और उसके हाथ में अपना हाथ डालकर बराबर-बराबर चलने लगा।

उसने मेरा हाथ थोड़ा कसते हुए कहा– ‘ये अच्छा किया तुमने। साथ चलने का तुम्हारे अंदर पहले दिन से ही आत्मविश्वास था, मगर तुम्हें इसे प्रकट करने में एक लम्बा वक़्त लगा।’

‘शायद हर चीज़ का पूर्व निर्धारित समय होता है।’ मैंने मुस्कुराते हुए कहा।

‘हाँ! यह सच है कि हर घटना पूर्व से तयशुदा होती है, मगर वह इसी जन्म में घटित होगी इसके बारे में कोई नहीं जानता है।’ उसने कहा।

फिर हम बोट पर पहुँच गए। उसने बोट के मालिक से कहा– ‘इसे पानी के बीच में ले चलो। बोट तट से इतनी दूर होनी चाहिए कि हमारी दिलचस्पी किनारा देखने की बजाए आसमान देखने में बनी रहे।’

थोड़ी देर में बोट निर्जन जल के मध्य खड़ी थी। शाम का अद्‌भुत नज़ारा था। दूर क्षितिज पर सूरज डूबता हुआ ऐसा लग रहा था जैसे कोई बच्चा दिन भर खेल कर शाम को थका-माँदा अपने घर को लौट रहा हो। शाम के वक़्त हवाएँ ज़रूर थोड़ी तेज़ थीं।

‘क्या तुम यहाँ आने वाली हवा की दिशा बता सकते हो?’ उसने पूछा।

मैंने कहा– 'जिस तरफ़ आपका मुँह है उस तरफ़ हवा की पीठ है और जिस तरफ़ आपकी पीठ है उस तरफ़ हवा का मुँह नहीं है।'

'इसका मतलब यहाँ आकर हवा दिशा भ्रम का शिकार हो गई है।' उसने हँसते हुए कहा।

मैंने कहा– नहीं, हवा को कोई दिशा-भ्रम नहीं हुआ है। दरअसल यहाँ दिशाएँ ख़ुद अपना स्थान भूल गई हैं। मैं जहाँ खड़ा हूँ वहाँ से आपकी दिशा दिख रही है, मगर वह बतायी नहीं जा सकती है। मगर जहाँ आप खड़ी हैं, वहाँ से मेरी दिशा बतायी जा सकती है और उसे देखा भी जा सकता है।'

उसने मेरे दोनों हाथ फैलाए और उनके नीचे अपने हाथ लाकर उनको एक समकोण पर फैला दिया। उसके बाद उसने कहा– 'अब दिशाएँ अपनी-अपनी दिशाओं में चली गई है। उन्हें जाने दिया जाए।'

'पहले थोड़ी कॉफ़ी पीते हैं, फिर उसके बाद शाम का इंतज़ाम करते हैं कुछ।'

मैंने कहा– 'मैं चाय पीना चाहूँगा।'

'ठीक है। थोड़ी चाय, थोड़ी कॉफ़ी मिलाकर पीते हैं। शायद यह फ़्यूज़न इस ख़ूबसूरत शाम को और अधिक ख़ूबसूरत बना दे।'

उसके बाद निश्चित रूप से शाम बेहद ख़ूबसूरत हो गई थी।

‘तुम्हें अक़्सर काला चश्मा लगाए देखती हूँ। क्या दुनिया की आँख में आँख डालकर बात करने की हिम्मत नहीं है? ऐसा क्या है जो तुम छिपाना चाहते हो? कोई ख़राब अनुभव? या फिर कोई और बात है। मैं जानना चाहती हूँ।’ उसने पूछा।

मैं सवालों की ऐसी झड़ी पर पहली बार ज़ोर से हँसा फिर अचानक से गम्भीर होते हुए बोला– ‘क्या आपको भी यह लगता है कि नेत्र सम्पर्क से बचना किसी क़िस्म के आत्मविश्वास की कमी की तरफ़ इशारा करता है?’

‘प्रश्न के बदले प्रश्न पूछने की तुम्हारी ख़राब आदत है। मुझे क्या लगता है उसे भूल जाओ, तुम अपनी बताओ कि ये काला चश्मा क्यों लगाते हो?’ उसने तुनकते हुए कहा।

‘मुझे शायद स्याह तस्वीर देखने की आदत है। मैं दुनिया को उसके असली रंग में बर्दाश्त नहीं कर पाता हूँ, इसलिए एक आवरण आँखों के सामने लगा लेता हूँ ताकि दुनिया अपने वास्तविक रंग में दिखायी न दे और मेरे कुछ हसीन भ्रम हमेशा बने रहें।’ मैंने संजीदगी से जवाब दिया।

‘अच्छा, दुनिया कितने रंग की है तुम्हारे हिसाब से? जो तुम अपना रंग तलाशते हो क्या वह तुम्हें यथार्थ से दूर नहीं ले जाता होगा?’ उसने फिर से एक नया सवाल पूछा।

‘मैं रंगों का हिसाब लगाने की कला नहीं जानता हूँ, मगर मुझे इतना ज़रूर पता है कि यथार्थ और कल्पना में बड़ा महीन भेद होता है और वह भेद मुझे समझ आ जाता है। बावजूद इसके मुझे यथार्थ में कोई ख़ास दिलचस्पी नहीं है, क्योंकि हम सब का एक निजी सच की तरह अपना एक निजी यथार्थ होता है, जो हो सकता है किसी के लिए बेहद काल्पनिक हो।’ मैंने जवाब दिया।

‘रंगों की बात चली है तो तुम्हें एक बात बताऊँ, मुझे तुम्हारी कलाई का रंग बेहद पसंद है।’ उसने मेरा हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा।

‘क्या कलाई का कोई अलग से रंग होता है?’ मैंने विस्मय से पूछा।

‘यदि देखा जाए तो शरीर के हर हिस्से का अपना एक मौलिक रंग होता है, मगर हमें एकरूपता और पैटर्न में देखने की आदत होती है, इसलिए हम रंग-भेद को समझ नहीं पाते हैं।’ उसने मुस्कुरा कर जवाब दिया।

‘चलो फ़र्ज़ कर लेते हैं।’ मैंने कहा।

‘फ़र्ज़ कर लेना किसी भी सम्बन्ध की सबसे ख़ूबसूरत मगर सबसे ख़राब बात होती है।’ उसने कहा।

‘ख़ूबसूरत और ख़राब एक साथ कैसे संभव है?’ मैंने पूछा।

‘इसलिए, क्योंकि इसमें एक औपचारिक सहमति की सुविधा छिपी होती है। यह किसी बात को विस्तार से बचाने का सबसे सुगम और सम्मानजनक तरीका है, मगर साथ ही इसमें एक क़िस्म की बौद्धिक चालाकी भी शामिल होती है। आप जिससे कहते हैं कि चलो फ़र्ज़ कर लेते हैं अप्रत्यक्ष रूप से आप उसे यह भी कह रहे होते हैं कि- तुम्हें अभी मेरे बारे में बहुत कुछ नहीं पता है।’

यह सुनकर मैंने अपनी आँखों पर लगा काला चश्मा उतार कर जेब में रख लिया।

‘मैं आपके पैसे लौटाने के लिए एक ख़ास क़िस्म की बेचैनी अपने अंदर सतत रूप से महसूस करता हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि जब तक मैं आपका ऋणी हूँ तब तक हमारा रिश्ता बराबरी का नहीं हो सकता है।’ मैंने एक दिन उससे कहा।

‘मगर मैंने कभी तुम्हें पैसे ऋणी बनाने की दृष्टि से नहीं दिए।’ उसने जवाब दिया।

लेन-देन का हम चाहे कितना बौद्धिक संस्करण तैयार करें मगर मुद्रा का अपना एक गहरा मनोविज्ञान होता है। यह एक व्यक्ति को दाता और दूसरे को याचक के तौर पर स्थापित कर देती है।’ मैंने कहा।

‘मगर मुझे लगता है कि यदि लौटा भी पाए तो तुम केवल मुद्रा ही लौटा पाओगे। मेरे ख़याल से उधार मृत्युपर्यन्त नहीं चुकाया जा सकता है।’ उसने मुस्कुराते हुए कहा।

‘हाँ! यही बात तो मेरे अंदर बेचैनी भरती है कि कुछ रुपए लौटाने भर से काम नहीं चलेगा। पैसा हमारे पास जिस स्वरूप में आता है, उस स्वरूप में वापिस नहीं लौट पाता है। वह अपने साथ एक मात्रा में हमारा आत्मसम्मान भी ले जाता है।’ मैंने थोड़ा अनमना होकर कहा।

‘मैं यह नहीं समझ पा रही हूँ कि तुम मूलतः चाहते क्या हो? रिश्ते को बराबर करना या अपना खोया हुआ आत्मसम्मान वापस लाना?’ उसने खीजते हुए पूछा।

‘नहीं। बस मैं इतना चाहता हूँ कि हमारे मध्य मुद्रा का मनोविज्ञान न खड़ा हो। मैं आपसे मन और तन के स्तर पर जुड़ा रहना चाहता हूँ, क्योंकि मुझे लगता है कि धन की अपनी एक अलग माया होती है। जब भी दो व्यक्तियों के मध्य दूरी बढ़ती है तब धन देने वाले व्यक्ति को यह अहसास होने लगता है कि उसका भावनात्मक निवेश डूब गया है।’ मैंने जवाब दिया।

‘आज तुम कैसी कारोबारी बातें करने लगे हो? मैंने कभी तुमसे पैसे माँगे? या कभी तुम्हें यह एहसास कराया कि तुम्हें कुछ दिया है? मेरे तो यह बात ध्यान में भी

नहीं रहती है कि मैंने तुम्हें कब और कितने पैसे दिए हैं।' उसने नाराज़ होते हुए कहा।

'बात कारोबारी नहीं है, मगर व्यावहारिक है, इसलिए आपसे चर्चा कर रहा हूँ। आपने एक बार मुझे पैसे देते हुए कहा था कि इस शर्त पर दे रही हूँ कि हम आज के बाद इस पर चर्चा नहीं करेंगे। मुझे वह बात अभी तक याद है। मगर मुझे लगता है आपने मेरा भविष्य उस दिन देख लिया था तभी आपने यह शर्त लगाई थी।' मैंने कहा।

'पर तुमने तो उस शर्त का उल्लंघन कर दिया आज। मैंने तुमसे कहा था कि तुम्हारे पास जब कभी पैसे हों, लौटा देना मगर इस लेन-देन पर कभी हमारे मध्य चर्चा नहीं होगी।' उसने कहा।

'हाँ। मैंने शर्त का उल्लंघन किया है, मगर मैंने आपसे अपना संकल्प शेयर किया। शायद मैं इसे पूरा कर पाऊँ या ना कर सकूँ, आपको कम-से-कम मेरी इच्छाशक्ति का बोध तो रहेगा। आपको यह तो नहीं लगेगा कि मैं केवल उपयोगितावादी था।' मैंने मुस्कुराते हुए कहा।

'मुझे तुम कभी उपयोगितावादी नहीं लगे और इतना तो तुम जानते ही हो कि यदि तुम ऐसे होते तो आज हम ये बात नहीं कर रहे होते। धन की उपयोगिता से मैं इनकार नहीं कर रही हूँ, मगर मेरे लिए धन हमेशा मनुष्य के पीछे खड़ा रहा है। मैं इसे साध्य मानती हूँ साधन नहीं।'

'और एक सलाह देना चाहूँगी कि संकल्प प्रकाशित करने से कमज़ोर पड़ जाते हैं। धन माँगना,धन देना और धन लौटाना तीनों को महज एक घटना समझो। इन्हें अपने आगे-पीछे के क्रम में घटित होना है और अगर ऐसा नहीं भी होना है तो भी यह पहले से तय है। इसे लेकर कोई योजना अपने मन में मत रखो। तुम्हारा एक

गहरा मूल्य है मेरे जीवन में उस मूल्य की बाहर के मूल्य से तुलना मत करना कभी। इतना कहकर वह चुप हो गयी।'

'ठीक है।' मैंने कहा।

संयोग से उस दिन मेरे पास लौटने के पैसे नहीं थे। मैंने उसका पर्स खोला और एक सौ का नोट लिया और चुपचाप चला आया। उसने पीछे से आवाज़ देकर कहा और ज़रूरत हो तो और ले लो।

मैंने उसकी तरफ़ पीठ किए जवाब में केवल गर्दन हिला दी और तेज़ी से उसके घर से निकल आया।

‘क्या ऐसा संभव है कि कोई स्त्री आप पर स्नेह भी रखे और उसे प्रेम का नाम देने से भी बचती हो?’ मैंने अचानक फ़ोन करके उससे यह बात पूछी।

‘ऐसे सवालों के जवाब फ़ोन पर नहीं दिए जा सकते हैं, इसके लिए तुम्हें मिलने आना पड़ेगा। कब आ सकते हो?’ उसने पूछा।

मैंने जवाब दिया– ‘अभी।’ उस समय रात के नौ बज रहे होंगे।

‘ठीक है। आ जाओ। अगर डिनर न किया हो तो बाहर से मेरा खाना भी पैक करवाते लाना।’ उसने कहा।

‘क्या लाऊँ खाने में?’ मैंने पूछा।

‘वही जो तुम्हें पसंद ना हो।’ उसने जवाब दिया।

मैंने फिर ज़्यादा कुछ नहीं पूछा और अपनी नापसंद का खाना पैक करवा कर घर पहुँच गया।

मैंने बैठते ही कहा– ‘अभी खाना गर्म है, पहले खाना खा लेते हैं।’

‘नहीं। मुझे खाना ठंडा पसंद है। ठंडा खाना हमें खाने का आदर करना सिखाता है। गर्म खाने में स्वाद प्राथमिकता पर होता है और ठंडे खाने में हम भोजन की आवश्यकता को अनुभूत कर सकते हैं।’ उसने कहा।

'मैं खाने को किचन में रख आया।' हालाँकि मुझे भूख लगी थी।

'... तो तुम पूछ रहे थे कि कोई स्त्री अपने प्रेम को अप्रकट क्यों रखना चाहती है?' उसने मुस्कुराते हुए कहा।

'नहीं। मेरा सवाल यह था कि क्या स्नेह और प्रेम में कोई बुनियादी अंतर होता है? कुछ जगह एक प्रकट होता है और एक छिपा रहता है।' मैंने कहा।

'प्रेम एक अम्ब्रेला टर्म है और स्नेह स्पेसिफिक। ऐसा संभव है कि एक स्त्री किसी के प्रति अकूत स्नेह रखती हो मगर उसे उससे आसक्ति वाला प्रेम ना हो? और ऐसा भी संभव है कि किसी स्त्री को मात्र किसी से आसक्ति हो, उसमें प्रेम बिल्कुल भी ना हो।' उसने जवाब दिया।

'आपके हिसाब से प्रेम क्या है?' मैंने पूछा।

'मेरे हिसाब से प्रेम वह है जो हिसाब-किताब, परिभाषा और व्याख्याओं से इतर है। प्रेम एक अमूर्त भाव है। उसको समझने के लिए मानवीय कमज़ोरियों से लेकर मनुष्यता की सघन अनुभूतियों से गुज़रना होता है। और उसके बाद जो बोध घटित होता है, वह नितांत ही निजी होता है। ज़रूरी नहीं आपका अनुभव किसी दूसरे के लिए लाभप्रद हो। इसलिए प्रेम को लेकर सबकी अपनी निजी परिभाषाएँ हैं और उनसे जुड़े अपने निजी व्यवहार और संताप हैं, जिन्हें हम अनुभव का नाम दे देते हैं।' इतना कहकर वह अपने अंदर के कमरे में चली गई।

मैं थोड़ी देर वहीं बैठा रहा, फिर मैंने वहीं से बैठे-बैठे कहा– 'मुझे लगता है हमें अब खाना खा लेना चाहिए।'

उसने वहीं से ऊँची आवाज़ में कहा– 'इसका मतलब है कि तुम मेरे जवाब से संतुष्ट नहीं हो।'

‘नहीं। मेरा मूल प्रश्न ही शायद अपूर्ण था, इसलिए उसका कोई एक संतुष्टिजनक जवाब नहीं हो सकता था।’ मैंने कहा।

‘यही पूर्णता स्नेह को प्रेम के प्रेत से बचाने के लिए सतत् प्रयासरत रहती है अन्यथा हम अपनी अपेक्षाओं और अपनी मानवीय कमजोरियों के बोझ तले दबकर एक ख़ूबसूरत तस्वीर को बिगाड़ने में लगे रहते हैं।’ यह बात उसने अपने कमरे से बोलनी शुरू की और मेरे क़रीब आकर ख़त्म की।

इसके बाद मैंने कोई सवाल नहीं किया। मैंने कहा– ‘मुझे अब चलना चाहिए।’

‘अब खाना खाने का एकदम सही वक़्त आया है। जब तुम जाने की बात कर रहे हो ऐसे में मैं चाहती हूँ कि यह तुम्हारी नापसंद का खाना ही तुम्हें रोकने का निमित्त बने। मैं तुम्हें कुछ कोर अपने हाथ से खिलाऊँगी।’

‘उससे क्या होगा?’ मैंने पूछा।

‘मैं तुम्हारी आँखों में वह बोध घटता हुआ देखना चाहती हूँ, जिसमें हम अपने किसी प्रियजन को महज़ इसलिए स्वीकार करते हैं, क्योंकि तब वह हमारे जीवन में अपरिहार्य होता है।’

‘क्या वह केवल ‘तब’ ही अपरिहार्य होता है? बाद में क्यों नहीं?’ मैंने पूछा।

‘इसका जवाब मैं किसी दिन चाय पर दूँगी। अभी खाना खाते हैं।’

उसने एक रोटी अपने हाथ से मुझे खिलाई। उस दिन पहली दफ़ा मैं पसंद और नापंसद के आग्रह से मुक्त हुआ और पहली दफ़ा यह जान पाया कि किसी का स्नेह हमें किस तरह से रूपांतरित कर देता है।

‘कोई भी स्त्री अपने से अधिक परिपक्व पुरुष को क्यों पसंद करती है?’ एक दिन मैंने पूछा।

‘मेरे ख़याल से यह स्त्री-पुरुष की नहीं सामान्य मानवीय स्वभाव की बात है। हम हमेशा एक ऐसे व्यक्ति को पसंद करते हैं, जो हमसे थोड़ा अलग और ऊँचा हो ताकि अगर कभी हम ज़िन्दगी में लड़खड़ा जाएँ तो वह हमें संभाल सके।’ उसने जवाब दिया।

‘मगर कुछ लोगों को यह कहते हुए भी मैंने सुना है कि उम्र क्या है? कुछ नहीं! यह केवल एक नम्बर है।’ मैंने कहा।

‘तुम दो अलग-अलग सवालों को एक जगह मिला रहे हो? पहला सवाल अपने से अधिक मैच्योर व्यक्ति को पसंद करने से सम्बन्धित था और दूसरा सवाल उम्र के अंतर से जुड़ा है। इस पर मैं इतना ही कहूँगी कि उम्र का मतलब महज़ कुछ सालों का बढ़ना नहीं होता है। कुछ लोग ताउम्र बड़े नहीं हो पाते हैं और कुछ लोग जन्म से ही बड़े पैदा होते हैं। इसलिए उम्र एक फिनोमिना भर है।’ उसने जवाब दिया।

‘क्या हमउम्र अच्छे दोस्त नहीं हो सकते हैं?’ मैंने पूछा।

‘हमउम्र लोग अच्छे दोस्त हो सकते हैं, मगर उनकी दोस्ती हमेशा वल्नरेबल रहेगी। हमउम्र लोगों की दोस्ती में लोक अधिक व्याप्त रहता है, उनकी यात्राएँ

अंदर की तरफ़ नहीं जाती हैं, क्योंकि वे सपनों और महत्वाकांक्षाओं के मध्य हमेशा लिप्त मिलेंगे।' उसने कहा।

'मुझसे कभी किसी ने कहा था कि अपने हमउम्र लोगों को दोस्त बनाओ। अपनी उम्र से अधिक उम्र के दोस्त रखने की आदत तुम्हें एक दिन बर्बाद कर देगी।' मैंने कहा।

'मेरे ख़याल से यदि यह बात एक स्त्री ने कही होगी तो मैं कहूँगी, हाँ! कुछ अंशों में यह बात पूर्णतः सच है और अगर किसी पुरुष ने तुम्हें यह कहा है तो मैं कहूँगी वह तुम्हें देख ज़रूर ईर्ष्या महसूस करता होगा। अपनी उम्र से अधिक उम्र वाले लोगों से दोस्ती रखने के अपने जोखिम होते हैं। मसलन आप हमेशा कालबोध को लेकर असमंजस के शिकार रहेंगे। एक ही बात तुम्हें अच्छी और ख़राब एक साथ लग सकती है।' उसने कहा।

'फिर तो दोस्ती एक बेहद जटिल चीज़ हुई इस हिसाब से।' मैंने कहा।

'दोस्ती जटिल नहीं है। मूलतः मनुष्य ख़ुद में एक बेहद जटिल चीज़ है। मानव व्यवहार इतनी अनिश्चितताओं से भरा हुआ है कि उसकी क़ीमत प्रत्येक मानवीय सम्बन्ध को अलग-अलग स्तरों पर चुकानी पड़ती है। उदाहरण के लिए तुम इसे इस प्रकार समझ सकते हो कि मनुष्य पहले किसी से प्रेम करता है, फिर उसे अपने जैसा ढालना चाहता है और जब वह इसमें ख़ुद को असफल पाता है तो ख़ुद को नायक सिद्ध करता हुआ जल्दबाज़ी में राय भी बना लेता है। यदि उससे पूछा जाए कि तुम अमुक व्यक्ति से प्रेम करते हो या घृणा तो वह इसका कोई सीधा जवाब नहीं देगा, उसकी बातों से प्रेम और घृणा तुम्हें ख़ुद चुननी होगी।' उसने जवाब दिया।

'वैसे मेरी संगत तुम्हें बर्बाद कर देगी, इसलिए मुझसे बचकर रहा करो।' उसने हँसते हुए कहा।

'मुझे लगता है कोई आपको तब तक बर्बाद नहीं कर सकता है, जब तक आप ख़ुद बर्बाद होना ना चाहें।' मैंने कहा।

'तो तुम बर्बाद होना चाहते हो?' उसने सवाल किया।

'नहीं मैं आबाद और बर्बाद दोनों शब्दों में अर्थ दोष पाता हूँ। इसलिए मैं 'कुछ और' होना चाहता हूँ।' मैंने हँसते हुए जवाब दिया।

'मैं अब इस पर कोई बहस नहीं करूँगी। बस ये शे'र पढ़ूँगी–

जो भी तसव्वुरात में है
वो सब मुमकिनात में है

हालांकि शायर का नाम नहीं मालूम और शे'र भी व्याकरण दोष रखता है, मगर हमारा जीवन भी ऐसे ही अनेक व्याकरण दोषों से होकर गुज़रता है और हम ताउम्र मुकम्मल होने की जद्दोजहद से गुज़रते रहते हैं।'

मैंने कहा– 'मुझे शे'र से अधिक आपका लहजा पसंद आया, इसलिए ये बात एक मुकम्मल बात हुई।'

‘क्या हमें दुःखों के ख़त्म होने की प्रतीक्षा करनी चाहिए?’ मैंने अचानक साथ चलते हुए यह सवाल उससे किया।

‘दुःख और सुख दोनों के मध्य यह ‘चाहिए’ शब्द ही सेतु बनाता है। सबसे पहले इस चाहिए से मुक्ति का रास्ता खोजना पड़ता है और अगर कोई इस ‘चाहिए’ से मुक्त हो जाता है तो फिर वह शायद प्रतीक्षा के कथित रोमांच से भी मुक्त हो जाता है।’ उसने जवाब दिया।

‘यदि जीवन से प्रतीक्षा का रोमांच अनुपस्थित हो जाए तो फिर मनुष्य को समय बड़ा बोझिल लगने लगता है। उसका कालबोध गड़बड़ा जाएगा।’ मैंने कहा।

‘प्रतीक्षा में सुख तलाशना और प्रतीक्षा की घड़ी से अपने जीवन के सही समय का मिलान करना एक क़िस्म की मूर्खता है। बाहर की दुनिया में रोमांच वही तलाशते हैं जो अपने अंदर के रोमांच से अपरिचित होते हैं।’ उसने कहा।

‘अब हर कोई व्यक्ति आपकी तरह चैतन्य नहीं हो सकता है।’ मैंने हँसते हुए कहा।

‘दुनिया का हर व्यक्ति चैतन्य हो सकता है या यूँ समझो कि जन्म के समय हर मनुष्य मुक्त और चैतन्य ही होता है। ये सारे अपवाद जीवन में बाद में ही शामिल होते हैं।’ इतना कहकर वह चुप हो गई।

थोड़ी देर हम चुपचाप साथ चलते रहे।

फिर उसने कहा– 'अच्छा एक बात बताओ। तुम्हारे जीवन का सबसे बड़ा अज्ञात दुःख क्या है ?और अपना एक सुख ऐसा बताओ जो तुम्हें हमेशा सुख ही लगा हो।'

'जब अज्ञात है तो उसे दुःख कैसे कहूँ? और मुझे सुख हमेशा एक मायावी चीज़ लगती है, इसलिए मेरे पास सुख के कई अनुवाद हैं जिनका पाठ मैं अपनी सुविधा से कर लेता हूँ।' मैंने जवाब दिया।

'क्या तुम्हें हमारा यूँ बेवजह साथ चलना सुखप्रद नहीं लग रहा है ?' उसने पूछा।

'मुझे इस तरह साथ चलना अच्छा लग रहा है। मैं इसे सुख की परिभाषा में इसलिए नहीं बाँध सकता, क्योंकि प्रायः सुख एक समय के बाद दुःख की शक्ल में परिवर्तित हो जाते हैं।' मैंने जवाब दिया।

'क्या तुम दुःखों से डरते हो जो सुख की बात नहीं करना चाहते ?' उसने पूछा।

'नहीं मैं दुःखों से डरता नहीं हूँ। हाँ मुझे दुःख की स्मृतियों से ज़रूर डर लगता है। मैं सुख और दुःख दोनों को ही अपनी स्मृति का हिस्सा बनने से रोकता हूँ।' मैंने कहा।

'फिर तो तुम मुद्दत से गहरी नींद में नहीं सोए होंगे। सोते वक़्त तुम्हारे जीवन के सारे सुख और दुःख सपना बनकर आते होंगे।' उसने कहा।

'हाँ ! मुझे याद नहीं आता कि मुझे अंतिम गहरी नींद कब आयी थी।' मैंने जवाब दिया।

'तुम जिस नींद की अभिलाषा में हो वैसी नींद तुम्हें किसी ऐसी स्त्री के सामीप्य में मिल सकती है जो तुम्हारे अंदर अपना सुख ना तलाशती हो।' उसने कहा।

‘क्या आप वैसी स्त्री हैं?’ मैंने पूछा।

‘पता नहीं। तुम कभी मेरे निकट सोकर देख लेना। तब शायद तुम्हें इस सवाल का सही जवाब मिल जाएगा।’ उसने कहा।

‘मुझे निकटता से भय लगता है, क्योंकि दुनिया में हर निकट आती चीज़ वास्तव में बहुत दूर जाने की एक संभावित तैयारी होती है।’ मैंने कहा।

‘तुम्हरा भय निर्मूल नहीं है। मगर निकट और दूर भी सुख और दुःख की तरह दो दरवाज़े भर हैं। कितना अच्छा हो अगर हम उन्हें खिड़की बना लें, जहाँ से दुनिया उतनी दिखे जितनी हम देखना चाहें।’ उसने कहा।

‘कोशिश करूँगा।’ इतना कहकर मैं वापस लौट आया।

‘जब मैं लौट रहा था तब मुझे लगा जैसे उसने कहा हो कि तुम मेरे साथ सोने के लिए नहीं, बल्कि जागने के लिए बने हो, इसलिए इस जन्म में गहरी नींद की कामना छोड़ दो।’

‘क्या स्त्री का जीवन में होना हमें सम्पन्न बनाता है?’ मैंने एक दिन उससे यूँ ही फ़ोन करके पूछा।

‘स्त्री का जीवन में होना ना सम्पन्न बनाता है और ना दरिद्र।’ उसने हँसते हुए कहा। ‘कुछ बनना या बिगड़ना हमारे ख़ुद के हाथ में होता है और हम प्रायः अपने निर्णयों या उपलब्धियों/असफलताओं के लिए बाहर एक चेहरा या घटना तलाश कर रहे होते हैं।’

‘हम ऐसा क्यों करते हैं?’ मैंने पूछा।

‘आज शाम साथ चाय पीते हैं, तब इस पर बात होगी।’ उसने यह कहकर फ़ोन काट दिया।

उस शाम मैं चाय पीने ना जा सका। मैं किसी दूसरे काम में उलझ कर रहा गया। फिर कई दिन तक उससे मेरी कोई बातचीत नहीं हुई।

एक दिन मैंने फ़ोन करके पूछा– ‘आज शाम क्या कर रही हैं आप?’

‘आपको सम्पन्न या दरिद्र होने की लत तो नहीं लग गई कहीं?’ उसने हँसते हुए कहा।

‘आप ख़ुद ही ख़ुद को खारिज कर रही हैं।’ मैंने कहा।

‘ऐसा मनुष्य को करते रहना चाहिए अन्यथा वह अपनी धारणाओं और मान्यताओं

के जंगल में एक दिन नितांत ही अकेला रह जाता है।' उसने थोड़ा गम्भीर होकर जवाब दिया।

'तो आज शाम चाय पीने का मन नहीं आपका?' मैंने पूछा।

'हाँ! आज शाम चाय का नहीं शराब पीने का मन है। अगर तुम्हारा भी मन हो तो घर पर आ सकते हो।' उसने कहा।

'ठीक है। शाम को मिलते हैं।' मैंने यह कहकर फ़ोन रख दिया।

दुर्योग से मैं उस शाम भी उनके घर ना जा सका। बाज़ दफ़ा चीज़ें अपने हिसाब से घटित हो रही होती हैं। हम केवल उनके साक्षी हो सकते हैं।

एक लम्बा अन्तराल बीत गया, फिर हमारा कोई संवाद नहीं हुआ।

मैं एक दिन किसी काम से पोस्ट ऑफिस गया था। वहाँ मैंने काउंटर पर खड़े हुए उसकी ख़ुशबू को महसूस किया। पलटकर पीछे देखा तो वह हाथ में एक छोटा लिफ़ाफ़ा लिए आ रही थी।

मैंने विस्मय से उनसे पूछा– 'यहाँ कैसे?'

'यह सवाल बेतुका है? जैसे तुम यहाँ हो ठीक वैसे ही मैं यहाँ हूँ।' उसने सीधा सपाट जवाब दिया। हालांकि उस जवाब में नाराज़गी की कोई ध्वनि नहीं थी।

उसके बाद हमने अपनी-अपनी लाइन में लग अपना काम निबटाया।

मैं थोड़ा जल्दी निवृत्त हो गया था, इसलिए बाहर मेन गेट के पास खड़ा हो गया। मैं खड़ा था, मगर यह नहीं कह सकता कि उसका इंतज़ार कर रहा था।

वह बाहर निकली और बोली– 'क्या कार्यक्रम है तुम्हारा?'

मैंने कहा– 'चलिए लंच करते हैं साथ।'

‘मैं जिसे पसंद करती हूँ उसके साथ चाय/कॉफ़ी/शराब लेना पसंद करती हूँ। लंच मुझे अकेले करना पसंद है।’

‘ऐसा करने की कोई ख़ास वजह?’ मैंने पूछा।

‘हाँ! मेरी यह मान्यता है कि खाना खाते समय आपका ध्यान केवल खाने पर होना चाहिए। यदि वह किसी की पसंद या नापसंद देखने में लगता है तो ऐसा करना भोजन का निरादर करना होता है।’ उसने कहा।

‘मगर मुझे इस समय भूख लगी है।’ मैंने कहा।

‘अब ये निजी चुनाव है, इस समय तुम मेरा साथ चुनते हो या अपने प्रिय भोजन का। जीवन में कई दफ़ा ऐसा वक़्त आता है जब हमें दो प्रिय चीज़ों में से किसी एक को चुनना पड़ता है।’ उसने हँसते हुआ कहा।

‘ठीक है। चलो शराब पीते हैं।’ मैंने कहा।

‘मुझे कोई एतराज़ नहीं है मगर ऐसा कहा जाता है ख़ाली पेट शराब पीकर आदमी ज़्यादा सच बोलता है।’ उसने कहा।

‘तो क्या आप सच सुनने में असहजता महसूस करती हैं।’ मैंने पूछा

‘बिल्कुल नहीं। बशर्ते तुम अपने सच को आत्म गौरव की तरह पेश ना करने लगो।’ उसने कहा।

‘ये तो पीने के बाद आप ख़ुद तय कर लेना कि ये सच है या आत्म गौरव।’ मैंने कहा। ‘पीने के बाद मैं कुछ तय नहीं करूँगी बस मैं यह देखूँगी कि तुम मेरे संग सम्पन्न हुए या दरिद्र।’ उसने हँसते हुए कहा।

इस बात पर मैं ज़ोर से हँसा और हम दोनों साथ कार में सवार हो लिए, एक अनजान गन्तव्य की तरफ़।

‘तुम्हें कौन-सी ऋतु प्रिय है?’ उसने एक दिन पूछा।

‘मैं शरद को पसंद करता हूँ। गर्मी मुझसे बर्दाश्त नहीं होती है।’ मैंने कहा।

‘क्या तुमने कभी यह जानने की कोशिश की कि अलग-अलग मनुष्यों को अलग-अलग ऋतुएँ क्यों प्रिय होती हैं?’ उसने पूछा।

‘शायद हम अपनी प्रकृति के अनुरूप ही ऋतुओं को पसंद या नापसंद करते हैं।’ मैंने जवाब दिया।

‘नहीं। बात महज प्रकृति तक सीमित नहीं होती है। दरअसल हमारा कम्फ़र्ट ज़ोन बहुत-सी चीज़ों से निर्मित होता है, उसमें मूल प्रकृति एक तत्व अवश्य है, मगर सभी चीज़ें उससे निर्धारित नहीं होती हैं।’ उसने कहा।

‘अच्छा! आपको कौन-सी ऋतु अधिक पसंद है?’ मैंने पूछा।

‘मेरी पसंद हर साल बदलती रहती है। किसी साल मुझे शीत भाता है तो किसी साल मैं ताप को महसूसने में सहज महसूस करती हूँ। बरसात मुझे पसंद है, मगर यदि झड़ी लग जाए तो मुझे बरसात से अरुचि हो जाती है। मैं चाहती हूँ एक आवेग की तरह बारिश बरस जाए और उसके बाद ठंडी हवा चले और धूप खिले।’ उसने कहा।

‘मैं बरसात में अक़्सर उदास हो जाता हूँ। बरसात के समय मुझे आसमान देखना

पसंद है, मगर शाम के समय की बारिश मुझे पसंद नहीं है। शाम को मैं खुले में घूमना चाहता हूँ। बरसात मुझे रात के तीसरे पहर की पसंद है। सपने और बरसात के मध्य मुझे अटके रहना एक ख़ास क़िस्म का सुख देता है।' मैंने कहा।

'गर्मियों में मैं अकेला रहना पसंद करती हूँ। गर्मी का मौसम उपेक्षा से भरा होता है, इसलिए इस मौसम में ख़ुद के निकट रहना मुझे पसंद है। गर्मियों की रातों में मैं पहाड़ को चिट्ठियाँ लिखती हूँ और उन्हें अपने तकिए के नीचे रख कर सो जाती हूँ। सपने में मुझे पहाड़ नहीं दिखाई देते तो मैं समझ जाती हूँ कि मेरी बात उन तक पहुँच गई है।' उसने कहा।

'मैं गर्मियों में सर्दियों को याद नहीं करता। गर्मी के प्रति यह मेरा अधिकतम आदर होता है।' मैं इतना कहकर चुप हो गया।

थोड़ी देर हमारे मध्य मौन पसरा रहा।

'जानते हो, आज मैं ये मौसम की बातें क्यों कर रही हूँ?' उसने पूछा।

'शायद यह आपके बदलने की एक भूमिका है।' मैंने जवाब दिया।

'तुम ग़लत हो यह तो नहीं कहूँगी, मगर हाँ तुम पूरी तरह सही नहीं हो। मेरे ख़याल से बदलने की कोई भूमिका नहीं हो सकती है। यह एक दिन अचानक से घटित हो जाता है। दरअसल जब हम कहते हैं कि फलाँ मनुष्य बदल गया तब हम उसकी आदतों के बदलने की बात कर रहे होते हैं, जबकि बदलाव एक आंतरिक घटना है। उसे देख पाना दुर्लभ होता है, मगर मैं आश्वस्त हूँ कि तुम उस बदलाव को देख सकते हो।' उसने कहा।

'आपसे मिलने के लिए कौन-सी ऋतु सबसे अनुकूल होगी?' मैंने थोड़ा कातर होकर पूछा।

‘जब भी हम मिलें वही ऋतु हमारे अनुकूल हो गई, इसलिए मेरे पास इस सवाल का ठीक-ठीक जवाब नहीं है।’ उसने कहा।

‘वैसे मिलने और बिछड़ने की बातें करना समय का अपव्यय है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि हम मौसमों के पार होकर कितनी शिद्दत से मिले।’ उसने मुस्कुरा कर कहा।

‘मुझे तो अब याद भी नहीं कि हम कितनी बार मिले हैं।’ मैंने कहा।

‘यह हमारी मुलाक़ातों की सबसे अच्छी बात है। हमने स्मृतियों को दास नहीं बनाया, बल्कि उन्हें संरक्षण से मुक्त रखा, इसलिए हमारी मुलाक़ातों को याद करने के लिए किसी घटना को याद करने की कभी ज़रूरत नहीं होगी।’

‘इसमें क्या अच्छा है? मैं तय नहीं कर पा रहा हूँ।’ मैंने कहा।

‘तुम कुछ तय नहीं कर पा रहे, यह ख़ुद में एक अच्छी बात है।’ उसने हँसकर जवाब दिया।

उसके बाद हम गले मिले। पहली दफ़ा उससे गले लगते हुए मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे हमने अपने-अपने मनपसंद मौसम एक-दूसरे के हवाले कर दिए हों।

‘क्या तुम्हें प्रेम में मुकरने का सुख पता है?’ उसने पूछा।

‘प्रेम में मुकरने पर कैसा सुख? यह तो एक क़िस्म की बेईमानी हुई।’ मैंने जवाब दिया।

‘अच्छा कोई आदमी अपने किए वादे से क्यों मुकरता होगा? क्या तुमने कभी इस बात पर विचार किया है।’ उसने पूछा।

‘शायद कोई बंधन या अक्षमता महसूस होती हो, इसलिए कोई अपने किए वादे से मुकरता होगा।’ मैंने कहा।

‘किसी के मुकरने के पीछे दोनों ही बातें नहीं होती हैं।’ उसने कहा।

‘फिर कोई क्यों मुकरता है?’ मैंने पूछा।

‘क्या तुम कभी अपने किसी वादे से मुकरे हो?’ उसने सवाल के बदले सवाल किया।

‘मैं किसी से वादे नहीं करता, क्योंकि मुझे लगता है कि वादे वे लोग करते हैं, जो वर्तमान की बजाए भविष्य में जीने की असफल कोशिश कर रहे होते हैं?’ मैंने जवाब दिया।

‘फिर तुम वादे से मुकरने को ठीक से नहीं समझ पाओगे।’ उसने हँसते हुए कहा।

‘ऐसा क्यों?’ मैंने पूछा।

‘ऐसा इसलिए कि तुमने कभी किसी की प्रतीक्षा के विस्तार को महसूस नहीं किया है।’ उसने जवाब दिया।

‘तो क्या आप कभी प्रेम में मुकरी हैं?’ मैंने पूछा।

‘हाँ! अनेक बार!’ उसने सपाट जवाब दिया।

‘इससे सामने वाले को कितनी तकलीफ़ हुई होगी, इसका आपको अंदाज़ा है?’ मैंने थोड़ा अनमना होकर कहा।

‘हाँ! मैं दरअसल इस तकलीफ़ को देखना चाहती थी। मैं किसी का परीक्षण नहीं कर रही थी, मगर मुझे लगता है कि प्रेम में दुःख एक अनिवार्य चीज़ है। जिस प्रेम में दुःख की उपस्थिति नहीं होती है वह प्रेम नहीं, बल्कि प्रेम से मिलती-जुलती कोई चीज़ हो सकती है।’ उसने एक साँस में जवाब दिया।

‘मैं आपको अपने वादे से मुकरता हुआ नहीं देखना चाहता।’ मैंने कहा।

‘तुम क्या चाहते हो यह तुम्हारा निजी चुनाव है, चुनाव से मेरे निर्णय कैसे प्रभावित हो सकते हैं।’ उसने कहा।

‘आप इतनी तटस्थता से कैसे पेश आ सकती हैं?’ मैंने पूछा।

‘तटस्थता नहीं इसे उपेक्षा कहा जाता है। अभी तक हालाँकि तो मैंने कोई वादे नहीं किए, अगर मैं करूँ भी तो संभव है कि मैं उनसे एक दिन इनकार कर दूँ।’ उसने कहा।

‘तो क्या मैं आपको अविश्वसनीय समझ सकता हूँ।’ मैंने पूछा।

‘विश्वास-अविश्वास ये सब बड़ी डायनामिक चीज़ें होती हैं। ठीक वैसे, जैसे कोई हमें कभी बेहद अच्छा लगता है तो कभी बेहद सामान्य।’ उसने कहा।

‘क्या आज आप मुझे सायास नाराज़ करने की चेष्टा कर रही हैं?’ मैंने पूछा।

‘नहीं। नाराज़ और ख़ुश दोनों से तुम्हें मुक्त देखना चाहती हूँ और इस विश्वास और अविश्वास के लौकिक जाल से भी। हम जब भी मिलें तो यह सोचकर मिलें कि संभव है यह आख़िरी मुलाक़ात हो।’ उसने मुस्कुराते हुए कहा।

‘हम्म!’ मैंने इतना कहा।

‘क्या मैं अपनी बातचीत का विषय बदल सकता हूँ?’ मैंने पूछा

‘जब विषय बदलने के लिए अनुमति लेनी पड़े, इसका अर्थ होता है कि नया विषय अभी आने के लिए तैयार नहीं है। हम इसे बलात् लाने की चेष्टा कर रहे हैं।’ उसने कहा।

‘यह भी तो हो सकता है कि पुराना विषय अरुचिकर हो गया हो।’ मैंने कहा।

‘कोई भी विषय रुचिकर या अरुचिकर नहीं होता है। हाँ! हमारा मन ज़रूर उसे रुचि या अरुचि की दृष्टि से देखना शुरू कर सकता है।’ उसने कहा।

‘आप मुझसे क्या कहकर मुकरने वाली हैं?’ मैंने थोड़ा गम्भीर होते हुए कहा।

‘यही कि मैं सदा के लिए हूँ।’ उसने हँसते हुए जवाब दिया।

‘चलो, अब दोनों का विषयान्तर हो गया है। कहीं चाय पी जाए चलकर।’ उसने मेरा हाथ पकड़ा और हम साथ-साथ चल पड़े।

मैं उस दिन मुकरने का भाष्य नहीं समझ पाया और जिस दिन समझ आया उस दिन मैं ख़ुद बहुत से वादों से मुकरना सीख गया था।

‘आप कहाँ चली गयी थीं?’ मैंने लगभग साल भर बाद मिलने पर पूछा।

‘कोई कहीं नहीं जाता है, बस हमारे रास्ते अलग हो जाते हैं एक दिन।’ उसने अनमने ढंग से जवाब दिया।

‘क्या मैं अब इसे आपके अलग होने की भूमिका समझूँ?’ मैंने पूछा।

‘अलग होने के लिए किसी भूमिका की ज़रूरत नहीं होती है। भूमिका वह लोग बाँधते हैं, जिनके पास विकल्पों का रोज़गार करने का विकल्प होता है। मुझे कभी किसी मनुष्य के विकल्प में दिलचस्पी नहीं रही, क्योंकि मेरा यह मानना है कि कोई भी किसी दूसरे का विकल्प कभी नहीं हो सकता है।’ उसने कहा।

‘मैं आपकी इस बात से सहमत हूँ।’ मैंने कहा।

‘साल भर से ज़्यादा वक़्त बीत गया क्या, तुम्हें कभी मेरी याद नहीं आयी?’ मैंने पूछा।

‘सच कहूँ तो तुम्हारी याद नहीं आयी। हाँ तुम्हारी कुछ बातों की याद ज़रूर आयी। मगर मैं बातों को याद करने को एक व्यर्थ का उपक्रम समझती हूँ। उनसे कुछ हासिल नहीं होता है।’ उसने कहा।

‘ऐसा कैसे संभव है कि आप मेरी बातों को मुझसे अलग करके देख सकें?’ मैंने कौतूहल भरे स्वर में कहा।

'क्यों नहीं संभव? हो सकता है मेरी दिलचस्पी केवल तुम्हारे मन में हो और मेरे लिए तुम्हारी देह गौण हो। मेरा जीवन का अभ्यास ऐसा है कि मनुष्य को याद किये बिना उसकी बातें याद कर सकती हूँ।' उसने कहा।

'ठीक है। इस पर क्या बहस करनी।' मैं इतना कहकर चुप हो गया।

'अच्छा मैं ये नहीं पूछूँगी कि तुमने साल भर क्या किया मगर एक सवाल मेरा भी है। और सवाल यह है कि जब मैं नहीं थी तब तुमने मुझे किस तरह से महसूस किया?' उसने पूछा।

'मुझे व्यक्ति और विचार में भेद करके किसी को महसूसने का हुनर नहीं आता है।' मैंने कहा।

'तंज़ कसने से कुछ न होगा। अपने मन की कहो कि जब मैं नहीं थी तब तुम्हारे जीवन में कितनी उपस्थित थी और कितनी अनुपस्थित?' उसने मुस्कुराते हुए कहा।

'जब आप नहीं थीं, तब मुझे कई बार आपकी याद आयी, मगर वह याद इतनी गहरी नहीं थी कि मैं आपकी तलाश में निकल पड़ता। मुझे आपकी कुछ बातें ज़्यादा याद आयीं और कई दफ़ा मुझे लगा कि आपके साथ बिना बात किये भी बातें की जा सकती हैं। मेरा मतलब तब मुझे आपकी कम्पनी की याद आयी। फिर मैंने सोचा आप गुमशुदा हैं, इसलिए इस गुमशुदगी को महसूस किया जाना चाहिए। इसलिए मैं साल भर आपकी गुमशुदगी महसूस करता रहा, बस।' मैंने कहा।

'यह एक बहुत अच्छी बात कही कि तुमने मेरी गुमशुदगी को महसूस किया। यदि तुम मुझे खोजने निकलते तो मैं तुम्हें कभी न मिलती। ये मेरी गुमशुदगी के प्रति तुम्हारी निष्ठा ही थी, जो आज मैं फिर से तुम्हारे सामने हूँ।' उसने कहा।

'मेरे ख़याल से हमें अतीत की न्यूनतम बातें करनी चाहिए।' मैंने कहा।

‘न्यूनतम नहीं, बल्कि बिल्कुल नहीं करनी चाहिए।’ उसने कहा।

‘चलो हम कल की बातें करते हैं। क्या तुम कल शाम फ्री हो? तुम्हारे साथ मैं एक लॉन्ग वॉक करना चाहती हूँ।’ उसने पूछा

‘कल क्यों, आज शाम क्यों नहीं?’ मैंने पूछा।

‘आज इसलिए नहीं, क्योंकि आज शाम तुम्हें मेरे आज की इस मुलाक़ात से निकलने में समय लगेगा।’ इतना कहकर वह चली गयी।

रात में उसका मैसेज मिला ’कल शाम छह बजे बुद्ध सर्कल पर मिलते हैं।’

अगले दिन मैं बुद्ध सर्कल पर साढ़े पाँच बजे ही पहुँच गया था।

थोड़ी देर चौराहे पर खड़ा दिशाओं की माया को देखता रहा। चौराहे पर खड़े होकर यह बोध होता है हर रास्ते की एक मंज़िल होती है। मगर जहाँ से एक रास्ता ख़त्म होता है, ठीक वहीं से एक नया रास्ता आरम्भ नहीं होता है। दो रास्तों के मध्य हम जितनी यात्रा करते हैं, उसे न कभी कोई देखता है और न ही उसे कोई एक नाम देता है।

थोड़ी देर बाद मुझे उसका एक एसएमएस मिला कि 'मेरी तबियत नासाज़ है आज कि लॉन्ग वाक स्थगित रहेगी। यदि तुम मेरे इस एसएमएस को पढ़कर उपजी निराशा का प्रबंधन करने में सफल हो जाओ तो घर पर आ सकते हो।' मैं इंतज़ार करूँगी।

मैंने यह एसएमएस पढ़ने के बाद ख़ुद को ठीक उस रास्ते पर खड़ा पाया, जिसकी मैं बात कर रहा था। दो रास्तों को मिलाने वाले एक साम्य बिंदु पर खड़े होकर मुझे अपनी निराशा का भी प्रबंधन करना था और यह भी निर्णय करना था कि मुझे उससे मिलने उसके घर जाना है या नहीं।

मैंने एसएमएस का कोई जवाब न दिया। और थोड़ी देर बाद उसके घर चला गया। मुझे देख उसे ख़ुशी महसूस हुई। यह बात उसके चेहरे पर पढ़ी जा सकती थी।

'मुझे पता था कि तुम आओगे।' उसने कहा।

‘कैसे पता था?’ मैंने पूछा।

‘तुमने एसएमएस का जवाब नहीं दिया तो मैं समझ गयी कि तुम आओगे।’ उसने कहा।

‘मगर मैंने तो निराशा के कारण को कोई जवाब नहीं दिया था, क्योंकि किसी को बुलाकर वहाँ मिलने न जाना मैं ग़लत मानता हूँ।’ मैंने थोड़े रोष के साथ कहा।

‘बिल्कुल, यह अच्छी बात नहीं है, मगर किसी को बुलाकर वहाँ न जाना इतनी भी बुरी बात नहीं है कि इसको लेकर दिल में क्लेश रखा जाए।’ उसने कहा।

‘आपकी तबियत ठीक है?’ मैंने पूछा।

‘हाँ। मेरी तबियत ठीक ही थी। दरअसल मैंने सोचा की लॉन्ग वाक करते हुए हम क्या तो आगे-पीछे चलेंगे या साथ-साथ। इन दोनों ही स्थितियों में हमारे मध्य हमारी बातें अकेली भटकती रहतीं। इसलिए मैंने तुम्हारे साथ वॉक करने का इरादा छोड़ दिया। वैसे भी वॉक मनुष्य को अकेले ही करनी चाहिए।’ उसने थोड़ा दार्शनिक मुद्रा में श्वास छोड़ते हुए कहा।

‘अगर मैं आज आपसे मिलने नहीं आता तो?’ मैंने पूछा।

‘ऐसा नहीं होता। मुझे पता था कि चौराहे पर खड़े होकर तुम्हारे पास मेरे पास आने के अलावा कोई विकल्प नहीं था।’ उसने हँसते हुए कहा।

‘मगर आपका घर ख़ुद एक दोराहे के निकट है।’ मैंने कहा।

‘मेरा घर दोराहे और चौराहे के मध्य है। हाँ, मेरा मकान ज़रूर वहीं है, जो तुम कह रहे हो।’ उसने कहा।

‘चाय पियेंगी?’ मैंने पूछा।

‘हाँ, मगर मेरे लिए दो कप बनाना।’ उसने कहा।

‘दो कप क्यों?’ मैंने पूछा

‘एक कप मैं जल्दबाज़ी में पियूँगी और एक धीरे-धीरे।’ उसने कहा।

‘ऐसा करने की कोई ख़ास वजह?’ मैंने पूछा।

‘ख़ास नहीं बड़ी आम वजह है! मैं गति और ठहराव के मध्य अपने स्वाद को केन्द्रित रखना चाहती हूँ, भले ही वह चाय हो या मैत्री।’ उसने हँसते हुए कहा।

मैं चाय बनाने चला गया। मैंने देखा रसोई में पहले से दो जूठे कप रखे हैं। मैंने वहीं से तेज़ आवाज़ में पूछा– ‘ये दोनों कप आपके झूठे हैं क्या?’

‘उसने कहा एक जूठा है और एक जूठा होने की प्रतीक्षा में रह गया है।’

मैं इस कथन का तब अर्थ नहीं समझ पाया। मगर उसे दो कप चाय एक साथ पीते देख मैं समझ गया था कि प्रतीक्षा और समय के मध्य क्या अंतर्सम्बन्ध होता है।

दो कप चाय एक साथ पीने की आदत मैंने उसी से सीखी थी।

एक दिन मुझे लगा कि बहुत दिन हो गए हैं। मुझे उससे मिलना चाहिए। मैंने फ़ोन किया तो फ़ोन स्विच ऑफ मिला। उस दिन मैं दिन भर यही सोचता रहा कि ये मेल-मिलाप क्या किसी नियोजन का हिस्सा है, क्योंकि वह जब चाहे मुझसे सम्पर्क कर सकती थी, मगर मुझे ऐसी सुविधा नहीं थी। मेरे हिस्से प्रतीक्षा लिखी थी। हमारी अधिकतर मुलाक़ातों में मेरे प्रयास न्यून या अर्थहीन थे। उसने जब चाहा मुझे अपने पास बुला लिया या मुझसे मिलने ख़ुद चली आयी।

शाम को मुझे एक एसएमएस मिला– 'कल सुबह हम चाय साथ पीएँगे।' मुझे यह एसएमएस पढ़कर आश्चर्य, कोफ़्त और ख़ुशी तीनों एक साथ महसूस हुई। मैंने उस एसएमएस का कोई जवाब नहीं दिया।

अगली सुबह मैं उसके घर पहुँचा। तब वह कुछ पौधों की कतर-ब्योंत कर रही थी। मुझे देख उसने हँसते हुए कहा– 'मुझे लगा था तुम नहीं आओगे।'

मैंने पूछा– 'ऐसा क्यों लगा आपको? तुमने कल मेरे मैसेज का कोई जवाब नहीं दिया इसलिए ऐसा लगा।' उसने कहा।

'मेरे पास उसका कोई जवाब नहीं था। इसलिए नहीं दिया।'

'फिर तुमने ठीक किया। जिस चीज़ का हमारे पास कोई जवाब न हो उसका जवाब देने से बचना चाहिए वरना हम सवाल की गरिमा को कम करते हैं।' उसने कहा।

‘हाँ ! मगर आपने सूचना दी थी। आपका कोई सवाल नहीं था।’ मैंने कहा।

‘सूचनाओं में एक छिपा हुआ सवाल होता है, मगर उसे पढ़ना सबके लिए आसान नहीं होता है।’ उसने मुस्कुराते हुए कहा।

मैंने इस पर कोई जवाब नहीं दिया।

थोड़ी देर मैं अकेला बैठा रहा और वह अपने काम में लगी रही।

फिर मैंने उसके निकट जाकर पूछा ‘आप क्यों कर रही है ये कतर-ब्योंत ?’

‘मुझे अच्छा लगता है, ऐसा करना।’ उसने जवाब दिया।

‘मगर आपको तो एक समय बेतरतीबी पसन्द थी।’ मैंने कहा।

‘हाँ ! एक समय थी। शायद आज भी है। मगर मुझे कांट-छांट इन दिनों अच्छी लग रही है। ऐसा करके मुझे लगता है जैसे मैं अधिक कनेक्टेड हूँ इनके साथ।’ उसने जवाब दिया।

‘क्या किसी के निकट रहने के लिए उसका सम्पादन करना ज़रूरी होता है ?’ मैंने पूछा।

‘बिल्कुल नहीं, मगर एक समय के बाद मनुष्य हो या पौधे, हमारे इर्द-गिर्द बहुत कुछ अवांछित और अनावश्यक एकत्र हो जाता है तो हमें कुछ अंशों में क्रूर होकर उसे विदा करना ही होता है।’ उसने जवाब दिया।

‘यानी निकट रहने के लिए क्रूर होना पड़ता है ?’ मैंने पूछा।

‘ऐसा नहीं है। क्रूरता तब तक हानिप्रद नहीं होती है जब तक इसमें किसी क़िस्म की हिंसा शामिल न हो।’ उसने जवाब दिया।

‘मगर काट-छांट ख़ुद में एक हिंसा है।’ मैंने कहा।

‘यह तुम्हें लगता है। यह हिंसा नहीं है, बल्कि हिंसा को रोकने की एक तैयारी है।’ उसने कहा।

इसके बाद मैं चुप हो गया।

थोड़ी देर बाद उसने चाय बनाई। मैं उतनी देर उसकी कटाई-छंटाई को देखता रहा जो निःसंदेह ख़ूबसूरती को बढ़ा रही थी।

चाय ख़त्म होने पर मैंने पूछा– ‘क्या एक दिन आप मेरे साथ भी ऐसा ही करेंगी?’

उसने हँसते हुए कहा– ‘अभी तुम्हारी बेतरतीबी से मुझे प्यार है इसलिए अभी तुम्हें डरने की ज़रूरत नहीं है।’

मैंने कहा– ‘कल ये प्यार बदल गया तो?’

‘प्यार को एक दिन बदलना ही होता है, मगर आश्वस्त रहो मेरे किसी कृत्य में कोई भावनात्मक हिंसा कभी शामिल न होगी, इसलिए तुम्हारी कतर-ब्योंत जब भी होगी वह तुम्हें और सँवारेगी, भले ही मैं उसे देखने के लिए रहूँ या न रहूँ।’ उसने कहा।

ये बात सुन मेरा जी उदास हो गया और मैं वहाँ से तुरंत चल पड़ा और उसने मुझे रोका भी नहीं।

‘तकलीफ़ और दुःख एक-दूसरे के पर्यायवाची भले लगते हों मगर दोनों में एक महीन भेद होता है। दुःख अपरिमेय होकर पसरता है उसके बाद हम अर्जित निःसहायताबोध से भर जाते हैं। जबकि गहरी से गहरी तकलीफ़ में एक उम्मीद हमेशा छिपी होती है, जो हमसे कहती है कि शायद ये तकलीफ़ एक दिन ढल जाएगी।’

‘तो क्या मैं तकलीफ़ को दुःख से पहले की एक अवस्था मान सकता हूँ?’ मैंने पूछा

‘नहीं। तकलीफ़ एक स्वतंत्र अवस्था है। इसकी ध्वनि दुःख से ज़रूर मिलती है, मगर यह दुःख के आगे या पीछे नहीं, बल्कि समानांतर बनी रहती है।’

‘तो क्या सुख में भी तकलीफ़ हो सकती है?’ मैंने पूछा।

‘सुख में होने वाली तकलीफ़ कुछ अर्थों में दुःखों से अधिक सघन और मारक होती है, क्योंकि इसमें किसी को आपके पीड़ित होने का यक़ीन नहीं आता है।’

‘तकलीफ़ से मुक्ति किस प्रकार संभव है?’ मैंने पूछा।

‘तकलीफ़ मुक्ति नहीं रूपान्तरण चाहती है, इसलिए इससे मुक्ति के बारे में सोचना व्यर्थ का प्रयोजन है।’

‘यह रूपांतरण किस प्रकार संभव हो सकता है?’ मैंने अधीरता से पूछा।

‘रूपान्तरण एक घटना है, जो घटित होती है। उसके लिए हमेशा तैयार रहना ही रूपान्तरण को संभव बनाता है। इसके अलावा तकलीफ़ का रूपान्तरण इतना निजी होता है कि मेरा अनुभव तुम्हारे किसी काम का नहीं है। तुम्हें अपना अनुभव ख़ुद तलाशना होगा। बहुत सम्भव है जब तुम्हारी तकलीफ़ का रूपान्तरण हो जाए तुम इसे सुख-दुःख की परिभाषा से बचाते नज़र आओ।’

‘कोई तुमसे पूछे अब कैसी है तकलीफ़?

और तुम कहो कुछ-कुछ आपकी तकलीफ़ के जैसी और कुछ आपसे बेहतर।’

मैं अक़्सर एक बात सोचता था कि इस मेल-मिलाप का आख़िर हासिल क्या है? क्या यह अस्तित्व का कोई हस्तक्षेप समझा जा सकता था या फिर नितांत ही एक संयोग था। उन दोनों में किस क़िस्म का राग था वह परिभाषित करना मुश्किल काम था। उनके मध्य न्यूनतम सहमतियाँ थीं मगर फिर भी दोनों के मध्य एक विचित्र क़िस्म की लोकतांत्रिकता थी। वे दोनों जब साथ होते तो तब वे एक-दूसरे के साथ होने के अर्थ को अनुभूत कर पाते और हमेशा एक दूसरे को सम्पन्न करते थे। उनके मध्य अज्ञात अपनत्व था।

कुछ अर्थों में वह मायावी थी तो कुछ अर्थों में बेहद व्यावहारिक एवं लौकिक। वे दोनों एक संयोग की वजह से मिले थे और एक संयोग ही उनके अलग होने की वजह बना। मगर उसे मात्र संयोग नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि मायाविनी को यह पहले दिन से पता था कि यह साथ केवल कुछ समय के लिए है, इसलिए जब भी उसके मन में प्रेम आग्रह की शक्ल लेता तो वह उस पर अपनी अनिच्छा के छींटे मार देती और फिर वह एहसास धुएँ की तरह हवा में विलीन हो जाता था।

दरअसल, उन दोनों के ज़रिए एक यात्रा पूर्ण हो रही थी जो अलग-अलग लोगों के दिल ओ' ज़ेहन में बरसों से चल रही थी।

अंतः अस्ति प्रारंभः

'क्या आख़िरी बार हम साथ यात्रा पर निकल सकते हैं?' एक दिन उसका मैसेज मिला।

जवाब देने से पहले मैं 'आख़िरी बार' पर अटक गया। यह पढ़कर मुझे अच्छा न लगा। मैंने जवाब में मैसेज किया कि 'आख़िरी बार क्यों?'

'उधर से जवाब आया कि जीवन में जैसे कोई चीज़ पहली बार होती है, इसी तरह से कोई चीज़ आख़िरी बार भी होती है।'

इसका मैंने कोई जवाब न दिया।

कुछ दिन बाद मुझे एक एसएमएस मिला। जिस पर जगह और समय का विवरण लिखा था। एक बार मेरा मन हुआ कि मैं लिख दूँ कि मैं नहीं चल सकूँगा, मगर मैंने कोई जवाब न दिया और उस यात्रा पर चलने के लिए आवश्यक तैयारी में लग गया।

आदतन वह हमेशा थोड़ी देर से आती थी, मगर इस बार मुझे देर हुई। वह सड़क किनारे अपनी कार में बैठी थी। मैं जाकर बगल की सीट पर बैठ गया।

'आपको कैसे पता था कि मैं आऊँगा ही?' मैंने बैठते ही सवाल किया।

'जब तुम कोई जवाब नहीं देते हो तो मुझे पता होता है कि तुम इनकार करने की स्थिति में नहीं हो। जो सवाल के बदले सवाल या जवाब देता है, उसके पास उस

समय विकल्प होते हैं। जिनके पास विकल्प नहीं होते हैं, उनका मौन मुझे संकल्प लगता है।' उसने कहा।

'मगर जवाब न देना किसी की अनिच्छा भी तो हो सकती है।' मैंने कहा।

'नहीं। अनिच्छा को पढ़ना मुझे आता है। जैसे अभी तुम्हारा ड्राइव करने का मन नहीं है।' उसने हँसते हुए कहा।

'हाँ यह सही है।' यह कहकर मैं मुस्कुरा दिया।

वह कार ड्राइव कर रही थी। मैंने यह महसूस किया था कि वह ड्राइव करते हुए अक़्सर एक हाथ से स्टीयरिंग पकड़ती थी और एक हाथ फ्री रखती।

मैंने पूछा– 'आप एक हाथ से क्यों ड्राइव करती हैं?'

उसने कहा– 'ताकि एक हाथ से तुम्हारा हाथ थाम सकूँ!' यह कहकर उसने मेरा हाथ पकड़ लिया।

फिर थोड़ी देर हम दोनों चुप रहे।

एक जगह गाड़ी रोक कर उसने कहा– 'अब तुम ड्राइव करो। मैंने कोई प्रतिकार न किया और ड्राइविंग सीट पर बैठ गया।'

थोड़ी देर बाद वह बोली– 'तुमने उस दिन पूछा था आख़िरी बार क्यों? आख़िरी बार इसलिए क्योंकि आज के बाद हम कभी नहीं मिलेंगे।'

पूछोगे नहीं, 'क्यों?'

मैंने जवाब दिया, नहीं।

मेरे इस जवाब पर वह ख़ुश थी। उसने कहा– 'तुम 'क्यों' का प्रयोग कम करते हो, इसलिए भी मैं तुम्हें पसंद करती हूँ।'

‘हम किधर जा रहे हैं?’ मैंने पूछा।

‘कहीं नहीं।’ उसने हँसते हुए जवाब दिया।

फिर एक लंबी गहरी साँस छोड़ते हुए कहा– ‘हम वहाँ जा रहे हैं, जहाँ से तुम्हें अकेले लौटना होगा।’

‘अकेले लौटना मुश्किल काम होता है न।’ मैंने कहा।

‘इतना भी मुश्किल नहीं होता बशर्तें आपने जाते हुए मील के पत्थर न गिने हों।’ उसने जवाब दिया।

तक़रीबन पाँच घंटे की यात्रा के बाद हम एक फॉरेस्ट डिपार्टमेंट के गेस्ट हाउस पर थे। यह जगह न बहुत सुनसान थी न बहुत रोशन। पहाड़ की तलहटी में एक छोटा जंगल था जहाँ यह गेस्ट हाउस था। वहाँ एक बुज़ुर्ग केयर टेकर था जो शायद उसे जानता था।

‘क्या आप यहाँ पहले भी आ चुकी हैं?’ मैंने पूछा।

‘मैं यहाँ पहले आ चुकी हूँ, मगर कब और कैसे यह सवाल अभी मत करना।’ उसने जवाब दिया।

मेरे मुँह से सिर्फ़ ‘ओके’ निकला।

दिन भर की यात्रा के कारण हम दोनों ही थके थे तो रात को खाना खाया और अपने अपने बिस्तर पर सो गए।

अगले दिन सुबह मैं जल्दी जग गया।

मैंने देखा वह अकेली बैठी चाय पी रही थी। मैं बिना कुछ कहे बाहर निकल गया।

मौसम अच्छा था, इसलिए मैंने सोचा कि सुबह की वॉक कर लेता हूँ। मैं गेस्ट हाउस से बाहर निकल ही रहा था कि पीछे से केयरटेकर ने मुझे आवाज़ दी और कहा– 'बाहर मत जाइए यह इलाका घूमने के लिहाज़ से सुरक्षित नहीं है।' एक बार मेरा मन हुआ कि उसकी बात अनसुनी कर दूँ मगर फिर मैं बिना कुछ कहे वापस लौट आया।

ऐसा अक़्सर हुआ कि हम दोनों के मध्य एक चुप्पी पसर जाती और हम एक-दूसरे की चुप्पी का आदर करते हुए अपने स्पेस में सिमटे रहते। मैं थोड़ी देर पर बिस्तर पड़ा मोबाइल देखता रहा फिर ऊब पर फ़ोन एक तरफ़ रख दिया।

थोड़ी देर बाद उसने मुझे बालकनी से आवाज़ लगाई।

जब मैं बालकनी पर पहुँचा तो मैंने देखा वह वहाँ खड़ी सैंडविच खा रही थी। उसने मुझसे पूछा– 'नाश्ते में क्या खाओगे?' मैंने कहा– 'आज मेरा मन ब्रंच करने का है।' उसने कहा– 'आज मेरा मन लंच स्किप करने का है, इसलिए यदि तुम्हें ब्रंच करना है तो आज वह ख़ुद बनाना पड़ेगा। हाँ! मैं अभी सैंडविच ज़रूर बना सकती हूँ।'

मैंने कहा– 'ठीक है सैंडविच ही खा लूँगा।'

'तुम बहुत जल्दी अपनी इच्छा बदल लेते हो यह एक अच्छी और ख़राब बात है।' उसने कहा।

मैंने कहा– 'कोई भी बात अच्छी और ख़राब एक साथ कैसे हो सकती है? या तो वह अच्छी होगी या ख़राब।'

'ऐसा नहीं है। कोई भी बात अच्छी और ख़राब एक साथ हो सकती है। तर्क की सबसे ख़ूबसूरत बात यही होती है कि इसका हम मनमुताबिक प्रयोग कर सकते हैं। अच्छी और ख़राब मूलतः भावना और दृष्टि होती है, जो एक साथ हो सकती है।

जैसे हम एक ही समय में किसी व्यक्ति से प्रेम कर सकते हैं और उसे नापसंद भी।' उसने थोड़ा गंभीर होकर जवाब दिया।

'क्या आज आपका मूड ख़राब है?' मैंने पूछा।

'नहीं। आज का दिन मेरे जीवन के सबसे ख़ूबसूरत दिनों में से एक है और यह दिन मुझे हमेशा याद रहेगा और आप भी इस दिन को अंतिम समय तक नहीं भूलेंगे।' उसने मुस्कुराते हुए कहा।

मुझे इस जवाब पर थोड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि अभी तक तो दिन में ऐसा कुछ विशेष मुझे लगा नहीं था।

'आज के बाद हम कभी नहीं मिलेंगे। आज हमारी आख़िरी मुलाक़ात है।' उसने मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर एक धीमी साँस छोड़ते हुए कहा।

मैं इस पर कुछ न बोला।

'यह न पूछोगे कि ऐसा क्यों?' उसने कहा।

'नहीं। आपको वह लोग पसंद हैं न जो 'क्यों' का न्यूनतम प्रयोग करते हैं, इसलिए।' मैंने कहा।

'हम्म! अच्छी बात है।' उसने कहा।

हालांकि यह सुनकर मेरा मन डूब गया था। भले मेरी उससे नियमित बातें-मुलाक़ातें नहीं थीं, मगर उसके रहते मेरे जीवन में गहरी आश्वस्ति थी मुझे लगता था मेरे पास कोई ऐसा है, जो लोक से परे है, जिसकी मुझसे अपेक्षाएँ और शिकायतें नगण्य हैं। और सबसे बड़ी बात जिसके साथ ने मुझे संवारा था।

वह अपने कमरे में थी और मैं अपने कमरे में था। शाम तक हम अपने-अपने कमरे

में रहे। उस दिन मैंने दो सैंडविच खाए थे। उसकी अलविदा की बात सुनकर मेरी भूख मर गई और मैंने फिर लंच न किया। मेरे पास एक किताब थी 'योगवशिष्ठ' मैं दोपहर तक उसके पन्ने पलटता रहा फिर अनमना होकर सो गया।

इस दोपहर मुझे सपना आया कि मैं एक बहुत ऊँचे पहाड़ पर अकेला हूँ और रास्ता भटक गया हूँ। मैं विकल प्यास में इधर-उधर भटक रहा हूँ। मेरे पास जो खाने-पीने का सामान था वह भी ख़त्म हो गया है। तभी मुझे एक बुज़ुर्ग दिखते हैं, मैं उनसे पूछता हूँ कि मुझे नीचे उतरना है और मुझे रास्ता नहीं मिल रहा है। वह बुज़ुर्ग हँसते हैं और कहते हैं कि नीचे उतरने का कोई रास्ता नहीं होता है। तुम ऊपर चढ़ने की सोचो। मैंने कहा मगर मैं तो चोटी पर हूँ इससे ऊपर कहाँ जाऊँगा? इस पर वह बुज़ुर्ग फिर हँसते हैं। तुम्हें लगता है कि तुम चोटी पर हो दरअसल तुम हो नहीं। तुम्हें अभी और ऊपर जाना है तब जाकर तुम देख पाओगे कि तुमने जहाँ से चलना शुरू किया था वह ढलान थी। असली चढ़ाई अभी बाक़ी है। यह सुनकर मेरी आँख खुल गई।

आज की शाम अलग थी। शीतलहर चल रही थी। शाम को चाय पीने का मन था मगर गेस्ट हाउस के किचन में दूध न था। काली चाय का विकल्प था जिसे पीने का मेरा मन न था।

मैं शाम को बाहर आग जलाने का इंतज़ाम करने के लिए केयरटेकर को ढूंढने लगा। वह गेस्ट हाउस में नहीं था। मैंने वहाँ रखी थोड़ी लकड़ियाँ एकत्र की तभी वह केयरटेकर आ गया। उसने कहा– 'आप बैठिए मैं आग जलाता हूँ।' वहाँ केवल असमिया बेंत की बनी दो पुरानी कुर्सियाँ पड़ी थीं। मैं एक कुर्सी पर बैठकर आग जलने का इंतज़ार करने लगा।

थोड़ी देर बाद वह भी अपने कमरे से निकल कर वहीं आकर बैठ गई।

‘क्या तुमने चाय पी?’ उसने पूछा।

‘मैंने कहा नहीं, आज दूध नहीं था किचन में।’

‘शराब पियोगे?’ उसने पूछा।

मैंने कहा– ‘हाँ पी जा सकती है।’

उसने कहा– ‘तुम्हें पता है शाम को कौन लोग शराब पीते हैं?’

मैंने कहा– ‘मुझे लगता है शराब पीने के लिए वक़्त देखना एक ग़ैर-ज़रूरी चीज़ है। जब मन हो किसी भी समय शराब पी जा सकती है।’

‘एक दृष्टि से तुम्हारी बात सही है, मगर समय, शराब और संगत इन तीनों का एक गहरा संबंध होता है। सही समय पर सही शराब अक़्सर नहीं मिलती और अगर ये दोनों मिल जाए तो सही व्यक्ति की संगत नहीं मिलती।’ उसने कहा।

‘आज तीनों एक साथ हैं इसलिए हमें इस सुखद संयोग का लाभ उठाना चाहिए।’ मैंने थोड़ा हँसते हुए कहा।

इस पर उसने कोई जवाब नहीं दिया और वह अपने कमरे की तरफ़ चली गई।

मैं इसका यह अर्थ लगाया कि वह शायद शराब लेने गई है, जोकि सही था।

दिन ढलने लगा था और ठंड काफी बढ़ गई थी। आग तापना सुख दे रहा था।

उसने कहा– ‘आज शराब पीने की एक शर्त होगी कि कोई चीयर्स न करेगा और अपने होश खोने का दावा दूसरे पर न थोपेगा।’

मैंने कहा– ‘ठीक है।’

हमने दो-दो पैग इस तरह पिए जैसे हम दोनों एक-दूसरे से एकदम अनजान हों। हम दोनों आज अपने-अपने साथ थे।

थोड़ी देर बाद मैंने पूछा– 'आग और हवा के मध्य क्या कभी दोस्ती हो सकती है?'

उसने कहा– 'दोस्ती के लिए प्रकृति से अधिक संयोग की भूमिका होती है और यह संयोग पूर्व निर्धारित होता है। यह कब कैसे कहाँ घटित होगा कोई नहीं जानता है।'

मैं थोड़ी देर चुप बैठा रहा।

आज की शाम अजीब-सी ख़ामोशी लिए हुए थी। मेरे मन में अनेक सवाल आ रहे थे, मगर मैं आज पहली बार उन्हें कहने का आत्मविश्वास अपने अंदर अनुपस्थित पा रहा था।

थोड़ी देर बाद उसने मुझसे पूछा– 'रात के बाद जो सुबह होती है, क्या वह वही सुबह होती है, जिसकी कल्पना में हम सोते हैं?'

'नहीं, हर सुबह अलग होती है। रात के बाद जो सुबह आती है, उसकी शक्ल हमारी काम्य सुबह से मिल सकती है।' मैंने कहा।

'क्या खाओगे आज डिनर में?' उसने एकदम से विषय बदलते हुए कहा।

'दाल-भात' मैंने जवाब दिया।

'रोटी नहीं?' उसने पूछा।

'नहीं। आज तरल और जीवन एक तल पर रखने का मन है मेरा।' मैंने जवाब दिया।

उसने केयरटेकर को बुलाकर दाल-भात बनाने के निर्देश दिए।

आज पहली बार मैं दिमाग़ और दिल के बीच अटक गया था। शराब पीने के बाद भी मेरा दिमाग़ सवाल करने बंद न कर रहा था और उसने आज अपने सवाल बेहद कम कर दिए थे।

हमने डिनर किया और गुड नाइट बोलकर अपने-अपने कमरे की तरफ़ बढ़ने लगे।

उसने कहा,‘ क्या आज रात हम एक साथ सो सकते हैं ?’

मैंने कहा– ‘ठीक है। आप चलिए मैं आता हूँ।’

मैं जब उसके कमरे में पहुँचा तो वह सोने ही वाली थी। उसने उनींदी-सी आँखें खोलीं और कहा– ‘आ गए !’

मैंने कहा– ‘हम्म !’

‘ठीक है, सो जाओ।’ यह कहकर वह करवट बदल कर सो गई।

मैं थोड़ी देर एकदम सीधा लेटा रहा। उसकी देह से एक मोहक गंध आ रही थी। यह गंध मेरे लिए नई थी, यह नशीली थी एकदम। थोड़ी देर बाद मैंने करवट बदली और मैं कब नींद के आगोश में चला गया मुझे पता न चला।

अगले दिन मेरी आँख जब खुली तो देखा कि दिन चढ़ आया है। मैं थोड़ा हड़बड़ा कर उठा। मैं कमरे में अकेला था और कमरा बहुत व्यवस्थित था। मैंने जब देखा कि उसका कोई सामान वहाँ नहीं है तो मैं तेज़ी से बाहर निकला। बाहर देखा उसकी कार भी वहाँ न थी। मेरी धड़कनें बढ़ी हुई थीं। तभी वह बुज़ुर्ग केयरटेकर

मेरे पास आया और उसने मुझे एक लिफ़ाफ़ा देते हुए कहा– 'मैडम यह आपके लिए दे गई हैं।'

मैं लिफ़ाफ़ा लेकर कमरे की तरफ़ दौड़ा और जल्दी से बेड पर बैठकर उसे खोलने लगा। सबसे पहले मुझे पाँच-पाँच सौ के पाँच नोट मिले और साथ में एक ख़त था।

मैं ख़त को पढ़ने लगा। ख़त कुछ यूँ था–

डियर...

यह ख़त और थोड़े से रुपए पाकर तुम हैरान और परेशान होंगे। मैं समझ सकती हूँ। ये थोड़े-से रुपए हैं, जो कि तुम्हारे लौटने के काम आएँगे। इतने पैसों से तुम शहर आराम से लौट पाओगे। अब तुम सोच रहे होंगे कि मैं ऐसे अचानक तुम्हें सोता हुआ छोड़कर क्यों और कहाँ निकल गई हूँ। मेरे पास न 'क्यों' का जवाब है और ना ही 'कहाँ' का ही कोई जवाब है। यह किसी क़िस्म का तिलिस्म, रहस्य या धोखा नहीं है। यह अस्तित्व का पूर्व निर्धारित नियोजन था। हम आकस्मिक रूप से मिले और मिलकर साथ चले मगर यह साथ चलना भी पहले से तय था। हमारी यात्रा यहीं तक थी। मैं अगर इससे अधिक तुम्हारे जीवन में रुकती तो मैं ही तुम्हारे जीवन की बाधा बन जाती, जो मैं नहीं बनना चाहती थी।

तुम एक पवित्र मन के व्यक्ति हो और बहुत जल्दी बात मान जाते हो। तुम्हारे पास नकार और निषेध कम हैं, इसलिए भी हम इस यात्रा में इतना लंबा चल सके। मैं तुम्हारी फ्रेंड, फ़िलॉस्फ़र या गाइड नहीं थी, मगर यह सच है कि तुम्हारे साथ मुझे संवाद करना हमेशा अच्छा लगता था। तुम्हारे साथ जज किए जाने का कोई ख़तरा नहीं था और मैंने भी कभी तुम्हें जज नहीं किया। तुमने मेरी यात्राओं को, प्रस्ताव को हमेशा मान दिया और कभी यह न पूछा कि मैं ही क्यों? यह सोचकर मैं हमेशा तुम्हारे प्रति स्नेह से भरती रहूँगी। तुम उम्र में मुझसे छोटे ज़रूर थे, मगर तुम्हारी मानसिक आयु अपनी वास्तविक उम्र से बहुत आगे की है। यह फ़िलहाल सुनने में

अच्छा लग सकता है, मगर इसकी तुमने क्या क़ीमत चुकाई है, यह केवल तुम जानते हो।

तुम्हारी ख़ुद से गहरी मुलाक़ातें हैं और जो स्त्री तुम्हारे अंदर रहती है, उससे तुम्हारा संवाद बना हुआ है, इसलिए तुम्हारे व्यक्तित्व पर स्त्री तत्व का प्रभाव दिखता है। तुम सोच रहे होंगे कि ये सब मामूली-सी बातें मैं क्यों लिख रही हूँ। तुम्हारे मन में अभी भी यही प्रश्न कौंध रहा है कि ये अचानक से तुम्हें अलविदा क्यों कह दिया मैंने। जबकि तुमने मेरे लिए कभी कोई परेशानी भी खड़ी न की।

'विदा-अलविदा' और 'कभी नहीं मिलेंगे' ये सब एक जैसे शब्द हैं, मगर इनकी ध्वनि भिन्न है। किसी से बिछड़कर दोबारा मिलने का उपक्रम मैं इसलिए अनुचित मानती हूँ, क्योंकि यह उसकी उम्मीद को ज़िंदा भी रखता है और उसे विरह से भी पीड़ित करता है। जीवन एक बहुफलकीय चीज़ है और हमें किसी एक भाव, व्यक्ति या आकर्षण पर अटकना नहीं चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति और वस्तु की एक विशेष समय सीमा तक ही उपयोगिता रहती है। मैं ख़ुद भी नहीं जानती हूँ कि मैं कैसे तुम्हारे जीवन में सम्मिलित हुई। मगर मुझे यह पहले दिन से पता था कि मैं तुम्हारे जीवन में कब तक रहूँगी। मगर मैंने यह बात तुम्हें कभी इसलिए न बताई क्योंकि तुम्हें यह सुनकर तकलीफ़ होती।

हमारा संबंध एकतरफ़ा नहीं था। हम दोनों ने एक-दूसरे के जीवन को विस्तार दिया है और उस विस्तार के कई-कई पाठ हो सकते हैं।

रात तुम आश्वस्ति भरी नींद में मेरे निकट सोए थे, तुम्हें आज के एकांत का कोई इल्म न था। उस क्षण मैं तुम्हारा हाथ पकड़ कर जंगल में निकल गयी। निस्तब्ध रात्रि में ऐसे विचरण मुझे भाते हैं। मैंने देखा हम दोनों एक उजाड़ मंदिर में प्रवेश कर रहे हैं। द्वार पर यक्षिणी की भग्न प्रतिमा है और भीतर किसी देवी का विग्रह। मैंने तुम्हें पूछा– 'तुम्हें क्या लगता है? पूजा-अर्चना के विधि-विधान, जन कोलाहल से रिक्त इस मंदिर में अब भी देवी आती होगी?'

तुमने उत्तर दिया– 'यह यक्षिणी ही बता सकती है।'

आगे तुम बोले– 'यह मंदिर अब देवी के एकांतवास का स्थान होगा शायद।'

'और यह यक्षिणी उस एकांत की रक्षक' मैंने कहा और मेरी नींद खुल गयी।

मैंने तुम्हें देखा। तुम गहरी नींद में थे। तुम्हारा चेहरा शांत और आश्वस्त था जैसे बुद्ध की मूर्ति का होता है।

मैंने मन ही मन कहा– 'तुम भी मेरे एकांत के रक्षक हो।' और सो गयी।

एकांत कितनी बड़ी ज़रूरत है ना। हरेक एकांत को एक रक्षक चाहिए शायद ताकि वह बेधड़क होकर जी सके।

आज से यही एकांत तुम्हारी सबसे बड़ी ताकत होगा। तुम्हारे पास स्मृतियाँ हैं और जब भी तुम्हारा मन उदास होगा या मुझे तलाशने के लिए विकल होगा उस समय वही स्मृतियाँ तुम्हें अवसाद से बचाएँगी।

मैं तुम्हें तुम्हारे हिस्से का एकांत सौंपने ही आयी थी। बाहर के कोलाहल से ऊबकर अब अंतस के एकांत में जीने का समय आ गया है।

मैं जानती हूँ ये सब दर्शन की बातें तुम्हारे मन को तसल्ली नहीं दे रही हैं, मगर तुम देखना यही एक दिन तुम्हारा सबसे सुंदर सच बनकर बाहर आएगा और तुम्हारे मन की कुमुदिनी हमेशा के लिए खिल उठेगी।

कल जब हम आ रहे थे तब मेरे मन में एकाध छोटे-छोटे द्वंद्व थे कि मेरा यूँ आकस्मिक जाना कहीं तुम्हारे प्रति मेरी एक हिंसा तो न होगी ? मगर फिर मैंने पाया कि जीवन के सबसे बड़े रोमांचकारी अवसर आकस्मिक ही घटित होते हैं। हमारा मिलना भी एक गहरी आकस्मिकता का ही परिणाम था।

ऐसा नहीं है कि मुझे तुम्हारी बिल्कुल याद न आएगी। मैं चाहे जितना तटस्थ या निरपेक्ष होने का दावा करूँ मगर मनुष्योचित व्यवहार से मैं भी पूर्णतः मुक्त नहीं हूँ, मगर मेरे लिए कोई भी याद इतनी गहरी कभी न रही है कि वही मेरी यात्रा की बाधा बन जाए। मैं चाहती हूँ कि तुम भी यादों को कभी अपने जीवन की बाधा मत बनने देना।

अभी बहुत से सवाल प्रकट होंगे। तुम उन्हें रोकना मत, उन्हें आने देना। अपनी खीझ, आक्रोश, व्याकुलता और प्रेम को साक्षी भाव से देखना और उन्हें गुज़रने देने की प्रतीक्षा करना। एक दिन तुम स्वतः अपने सभी सवालों के उत्तर पा जाओगे। वैसे भी उत्तर से अधिक हमें प्रश्न प्रिय होते हैं, इसलिए हम उन्हें सीने से लगाए घूमते रहते हैं।

अभी तुम्हारे पास मुझसे मिलने का एक ज़रिया बचा है, वह है सपने। मगर मैं तुम्हें सपने में शायद ही कभी दिखाई दूँ, क्योंकि हमारी कोई वर्जित या दमित कामना नहीं थी। इसलिए धीरे-धीरे मैं सपनों से भी धुएँ की तरह विलीन हो जाऊँगी। मैं एक बात निश्चित होकर कह सकती हूँ कि भले ही अब हम कभी नहीं मिलेंगे, मगर जब भी तुम मुझे याद करोगे मुझ तक तुम्हारी याद पहुँच जाएगी। मैं तुम्हें याद करूँ, अलबत्ता तो ऐसा होगा नहीं और अगर हुआ भी तो भी तुम्हें इसकी ख़बर न लगेगी मैंने इस बात का पक्का इंतज़ाम किया हुआ है।

यह ख़त का पुर्ज़ा तुम्हें कोई बोध नहीं देगा और तुम इसके अंत तक भी यह तय न कर सकोगे कि मैं तुम्हें क्यों मिली थी और क्यों अचानक से ग़ायब हो गई। यही इस रिश्ते की सबसे ख़ूबसूरत बात भी थी कि हमारे पास आक्षेप या शिकायतें नहीं थी। शिकायतें करता हुआ मनुष्य दीन दिखने लगता है और मैंने हमेशा तुम्हें एक उच्च चेतना के पुरुष के रूप में पाया था।

अब मैं चुप होती हूँ। इस चुप का अनुवाद तुम्हें करना है। इस अनुवाद के लिए तुम्हें अपनी मौलिक भाषा और लिपि निर्मित करनी होगी। मुझे पूरा यक़ीन है कि इस चुप

का सबसे बढ़िया अनुवाद तुम करोगे और जिसे हमेशा कविता की तरह पढ़ा जाएगा।

तुम्हारे इस अनुवाद को मैं जिस दिन पढ़ूँगी उस दिन मुझे कैवल्य मिलेगा। तब तक मैं अज्ञातवास को चुनती हूँ।

मन मज़बूत रहे और ध्यान प्रगाढ़ हो।

इस शुभकामना के साथ

तुम्हारी

कोई नहीं...

उस 'चुप' का अनुवाद करने के लिए मैंने यह सब लिखा। मगर यह अनुवाद भी अधूरा ही रहा। शायद यही अधूरापन मुझसे तब तक लिखवाता रहेगा जब तक मैं उसके चुप होने का कारण तलाशना बंद नहीं कर देता।

◆ ◆